मेरे जेल के अनुभव।

है यह कारागार पूज्य अति शय मेरे हित।
जहां जन्म ले किया कृष्ण ने था दुख मोचित॥

महात्मा गांधी लिखित।

प्रकाशक—
शिवनारायण मिश्र,
"प्रताप कार्यालय"
कानपुर।

प्रताप प्रेस, कानपुर में मुद्रित।

द्वितीय संस्करण
२०००

१९७५

[illegible]

सूची।

मेरे जेल के अनुभव।

प्रथम वार।

दूसरी वार।

तीसरी वार।

दो बातें

हमें इस बात की आवश्यकता नहीं मालूम होती कि यहां इस पुस्तक के लेखक महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी का परिचय दिया जाय, क्योंकि उनकी कीर्ति-कौमुदी केवल भारतवर्ष ही में नहीं बल्कि सारे संसार में प्रकाशमान है। हां, इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में इतना कहा जा सकता है कि यह पुस्तक उस महात्मा की लिखी हुई है जो न केवल सदा देश और जाति के नाम पर कारागार को अपना पूज्य देवालय मानता रहा है या जिसका जन्म दुखियों के दुख दूर करने और निर्बलों की सहायता के लिए हुआ है, वरन् बलवानों और अन्यायियों को बदला देने के लिए भी, मगर घूंसे का जवाब घूंसे से न देकर, बल्कि चुपचाप और भी अधिक अन्याय सहते हुए, तथा जिसने 'सफलता की कुञ्जी' अन्याय और जुल्म सहने—सत्याग्रह—को ही मान रक्खा है और जिसका विश्वास है कि, "भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधिकार प्राप्त करने पड़ेंगे", जिसका यह भी दृढ़ विश्वास है कि यदि हमें सफलता नहीं प्राप्त होती तो यह हमारी अन्याय सहने की शक्ति की कमी—हमारे सत्याग्रह की कमजोरी—है। महात्मा को अपने इन्हीं सिद्धान्तों के लिए दक्षिण अफ्रिका में कई बार जेल जाना पड़ा था।

इस स्थान पर यदि इस बात का वर्णन संक्षेप में कर दिया जाय कि किन कारणों से—किन असुभीतों—[illegible]यों को दूर करने के लिए—महात्मा जी को जेल जाना पड़ा था

तो अनुचित न होगा, बल्कि एक प्रकार इस से पाठकों की ज्ञान-वृद्धि ही होगी।

भारत से कितने ही कुली प्रतिवर्ष दक्षिण अफ्रिका को भेजे जाते थे। भारत-सरकार की सम्मति से ट्रान्सवाल की सरकार ने वहा के शर्तबन्द भारतीय मजदूरों पर प्रतिवर्ष ३ पाउ का कर लगाया था। फिर १९०७ ईसवी में एक और कानून "एशियाटिक एक्ट" बना। १९०८ ईसवी से उस का व्यवहार किया जाने लगा। यह कानून बडा ही अपमानजनक था। उसके अनुसार १६ वर्ष से अधिक अवस्था वाला प्रत्येक भारतवासी अपना नाम रजिस्टर कराने पर बाध्य था। तरह तरह से भारतीयों की १८ अगुलियों की छाप ली जाती थी। उनके लिए 'कुली' शब्द का उपयोग उसमें खुल्लम खुल्ला किया था, यद्यपि वहा प्रतिष्ठित, सभ्य, सुशिक्षित और धन सम्पन्न भारतवासी भी कितने ही है। उनको "एशियाटिक रजिस्ट्रेशन सार्टिफिकट" नामक एक परवाना हमेशा साथ रखना पडता था। इस कानून को भङ्ग करने वाला भारी से भारी सजा का पात्र समझा जाता था। इस अमानुषिक, अपमान-जनक और निर्दयता तथा अन्याय-मूलक कानून का तीव्र विरोध वहा की भारतीय जनता ने किया—विलायत तक डेपुटेशन भेजा गया—पर नतीजा कुछ न निकला। कानून पास हो गया, और सम्राट एडवर्ड ने भी उसे पसन्द कर लिया। बस फिर क्या देर थी। अफरीका-स्थित भारतवासियों ने कर्मवीर महात्मा गाधी के नेतृत्व में सत्याग्रह की लडाई छेड दी। समस्त नर-नारियों और बालकों तक ने इसमें योग दिया। सैकडों आदमी पशुओं की तरह जेल में ठूँस दिये गये। महात्मा गांधी को भी जनवरी

और अगस्त १९०८ में दोबार, जेलखाने की हवा खानी पड़ी। इतना होने पर भी—भारतवासियों के इतना प्रतीकार करने पर भी—वहां की सरकार टस से मस न हुई। १९११ तक यही अंधाधुन्धी जारी रही। इसी बीच भारत में भी खूब आन्दोलन किया गया। तब ट्रान्सवाल सरकार ने एक चाल चली। उसके कर्ता धर्ता जनरल स्मट्स ने महात्मा गांधी को बुलाया और कानून में सुधार करने का अभिवचन देकर, उनका नाम रजिस्टर्ड करा लिया। गांधी जी तो ठहरे पूरे महात्मा। वे "आत्मवत् सर्वभूतेषु" के कायल हैं। उन्होंने कहा—इतना बड़ा उच्च अधिकारी क्या दगाबाजी करेगा? उसके वचन पर विश्वास करके उन्होंने इस शर्त पर कि यह कानून रद्द कर दिया जाय अपना नाम रजिस्टर करा लिया। अन्य भारतवासियों ने भी ऐसा ही किया। पर सरकार ने कानून में कुछ भी रद्दोबदल न किया उसे ज्यों का त्यों कायम रक्खा। अब तो लोगों के क्रोध का पारावार न रहा। वे फिर से सत्याग्रह का झण्डा खड़ा करने के इरादे में ही थे, कि १९१२ में स्वर्गीय गोखले वहां पधारे। ट्रान्सवाल-सरकार ने उनसे वादा किया कि हां, कानून में सुधार कर दिया जायगा। पर किया कराया कुछ नहीं? झूठ बोल कर अपना काम बना लेने में तो वहां की सरकार अपनी कुछ हानि समझती ही नहीं। कानून में सुधार करना दूर रहा १९१३ में उसने एक नया कानून बना डाला। उसने, यह कानून क्या बनाया, भारतवासियों के घावों पर नमक छिड़क दिया। उसके अनुसार वही भारतवासी केप कालोनी में जा सकते थे जो अंगरेजी भाषा के बड़े पण्डित हों। इसके पहले, वे आजादी से वहां जा आ सकते थे। फ्री स्टेट में जाने वाले भारतवासियों को

यह लिख देना पड़ता कि वहां जाकर हम व्यापार, और खेती-बारी न करेंगे। केवल मजदूरी करके अपना गुजर करेंगे। सब से बड़ी आक्षेप योग्य और हृदय पर चोट पहुंचाने वाली बात यह थी कि जिस धर्म्म में एक से अधिक विवाह कर लेने की रीति है उस धर्म्म के अनु सार किया हुआ विवाह अप्रामाणिक माना जाता। प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को अपना विवाह न्यायालय में जाकर रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा अर्थात् उनकी स्त्रियां रखेली समझी जायगी। इस कानून के भी खिलाफ भारतवासियों ने अपनी आवाज उठाई। पर उसकी कुछ भी परवा न की गई और कानून पास होगया। बस, फिर से सत्याग्रह आरम्भ कर दिया गया। इसमें फिर तीसरी बार महात्मा जी को जेल जाना पड़ा। इस बार यह आन्दोलन क्या अफ्रिका क्या भारत सब कहीं बड़े जोर शोर से फैला। तब एक कमीशन बैठाया गया। उसमें योग देने के लिए महात्मा गांधी छोड़ दिये गये। अन्त में कमीशन की सूचना के अनुसार २ जून १९१४ को सरकार ने एक " इंडियन रिलीफ बिल " बनाया। जुलाई १९१४ में सम्राट् ने भी उसकी स्वीकृति देदी। तब जाकर इतनी हाय-हत्या के बाद उनकी अधिकांश शिकायतें दूर हुईं। अस्तु।

इस से पाठक महात्मा जी के बार बार जेल जाने का कारण भली भांति समझ गये होंगे। जेलें में इन्हें क्या तकलीफ़ और आराम मिला तथा भारतवासी कैदियों के साथ वहां कैसा सलूक किया जाता है इसका जो अनुभव उन्हें जेल में हुआ उसी का सविस्तर वर्णन महात्मा जी ने अपनी ही क़लम से आगे के पन्नों में किया है।

यह इस पुस्तक का हिन्दी में दूसरा संस्करण है। प्रथम संस्करण में इस पुस्तक का मूल्य आठ आने रखा गया था किन्तु इस विचार से कि इस पुस्तक का जितना अधिक प्रचार हो उतनाही अच्छा है, और यह तभी हो सकता है जब पुस्तक सस्ती हो। अत कागज आदि की इतनी मँहगी होने पर भी ॥) के बजाय ।=)आना मूल्य कर दिया गया है। हम आगे कागज आदि के मूल्य में कमी होते ही और भी सस्ता संस्करण निकालेंगे। अन्त में हम महात्मा गाँधी जी के अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन की हमें सहर्ष आज्ञा देदी।

प्रताप कार्य्यालय
कानपुर
२२—३—१८

विनीत,
प्रकाशक।

मेरे जेल के अनुभव।
प्रथम संस्करण—जुलाई १९१७ ई०
द्वितीय संस्करण-मार्च १९१८ ई०

महात्मा गांधी
लिखित

मेरे जेल के अनुभव

[प्रथम बार]

मैं तथा मेरे अन्य भारतवासी भाइयों ने थोड़े ही दिन जेलखाने की हवा खाई है। तथापि, उतनी ही अवधि में जो कुछ अनुभव मुझे वहा प्राप्त हुए हैं वे औरों के लिए भी उपयोगी हैं। लोगों ने उनके जानने की उत्सुकता भी प्रकट की है। अतएव मैं उन्हें प्रकट करता हूँ। लोगों का यह खयाल है कि भारतीय जाति को जेल द्वारा अभी कितने ही अधिकार प्राप्त करने पड़ेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि लोग जेल के दुखों और सुखों से जानकार हो जाय। कितनी ही बार तो लोग अपनी ही कल्पना से उस दशा को भी दुखमयी मान लेते हैं जो वास्तव में वैसी नहीं। इस से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रत्येक वस्तु या विषय के सत्य-ज्ञान से लाभ ही है। अच्छा, तो अब हमारी काराकहानी सुनिए –

१० जनवरी सन् १९०८ के दोपहर को दो बार हमारे जेल में धाध दिये जाने की गप उड़ी और अन्त में वह वक्त आ ही गया। मेरे साथियों को और मुझे सजा दी जाने के पहिले प्रिटोरिया (ट्रान्सवाल) से तार आ गया था। उसमें लिखा था कि गिरफ्तार-शुदा अर्थात् पकड़े गये

हिंदुस्तानी नये कानून के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं हुए, अतएव उन्हें तीन महीने की कड़ी कैद की सजा दी गई। अर्थ-दण्ड भी उन्हें दिया गया। यदि जुर्माना न दाखिल करें तो और तीन महीने कैद भोगने की आज्ञा थी। यह सुन कर मैं दुखित हुआ। मैंने मैजिस्ट्रेट से अधिक से अधिक सजा मांगी, पर वह न मिली। हम सब को दो महीने की सादी कैद की सजा दी गई। मेरे साथ मिस्टर पी० के० नायडू, मि० सी० एम० पिल्ले, मि० ईस्टन तथा मिस्टर फोर्टुन थे। पिछले दो सज्जन चीनी हैं। सजा मिल चुकने पर मैं अदालत के पीछे वाले कैदखाने में दो चार मिनट तक रक्खा गया। इसके बाद मैं चुपचाप एक गाड़ी में बिठाया गया। गाड़ी रवाना हुई। उस समय मेरे मन में कितनी ही तरंगें उठीं। क्या किसी दूर स्थान में ले जाकर राजनैतिक कैदियों का सा बर्ताव मेरे साथ किया जायगा? क्या और लोगों से मैं अलग रक्खा जाऊंगा? या क्या मुझे "जोहान्सबर्ग" के सिवा और कहीं ले जायगे? ऐसे कितने ही विचार मेरे मन में आये। मेरे साथ जो जासूस सिपाही था वह मुझ से माफी मांग रहा था। मैंने कहा कि मुझ से माफी मांगने की जरूरत नहीं, क्योंकि मुझे जेलखाने में ले जाना तो तुम्हारा कर्तव्य ही है।

कैदखाना।

मुझे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि मेरी तरंगें व्यर्थ थीं। क्योंकि जहां और कैदी गये थे वहीं मुझे भी जाना पड़ा। थोड़ी ही देर में और साथी भी आ गये। हम सब मिले। पहिले तो हम सब तौले गये। फिर सब के अंगूठे की निशानी ली गई। इसके बाद सब नंगे किये गये। तब हमें जेल की

पोशाक दी गई। पोशाक में इतनी चीज हमें मिलीं —काली पतलून, कमीज, कमीज के ऊपर का कपड़ा (जिसे अगरेजी में 'जपेर' कहते है), टोपी और मोजा। फिर हमें एक थैली दी गई। उसमें हमारे पुराने कपड़े रक्खे गये। तब हमें अपनी कोठरियों में भेजा गया। भेजने के पहिले प्रत्येक को आठ औंस रोटी के टुकड़े दिये गये। फिर हमें काफिरों के कैदखाने में ले गये।

काफिर और भारतीय एक!

यहां हमारे कपड़ों पर "N" यह छाप लगाई गई। अर्थात् हम 'नेटिवों' की पंक्ति में रक्खे गये। हम सब तकलीफें सहने को तैयार थे पर यह नहीं जानते थे कि हमारी ऐसी दुर्गति होगी। गोरों के साथ न रक्खा जाना तो हमें न खलता परन्तु ठेठ काफिरों के साथ रहना हमें बरदाश्त न हुआ। यह देख कर हमने सोचा कि सत्याग्रह की लड़ाई जैसे महत्व की है वैसे ही वह समय पर शुरू भी हुई है। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि यह कानून क्या है मानों भारतीयों को पूर्णत तहस-नहस करने वाला खूनी शस्त्र है। हम काफिरों के साथ रक्खे गये, यह भी अच्छा ही हुआ। उन लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार इत्यादि बातें जानने का यह बहुत अच्छा मौका मिला। दूसरे हमें यह भी ठीक न जंचा कि उन लोगों के साथ रहने में हम अपनी हतक समझें। तथापि साधारण रीति से यही कहना पड़ता है कि भारतवासियों को अलग ही रखना चाहिए। हमारी कोठरियों के बगल में ही काफिरों की कोठरियां थीं। उनमें तथा बाहर के मैदान में वे कोहराम करते हुए पड़े रहते थे। हम लोग बिना मजदूरी के कैदी थे अर्थात् हमें सादी

सजा मिली थी-हम से मजदूरी नहीं कराई जाती थी-अतएव हमारी कोठरियां जुदी जुदी थीं। अन्यथा हम भी उन्हीं में ठूसे जाते। सख्त सजा वाले भारतीय कैदी काफिरों के ही साथ रक्खे जाते हैं।

इससे हतक होती है कि नहीं, इस विचार को छोड़ दें तो भी इतना कहना काफी है कि यह काम जोखों का है। काफिर अधिकांश जङ्गली होते हैं। फिर कैदखाने में आये हुए काफिरों का तो पूछना ही क्या? ये बड़े नटखट और बहुत गन्दे होते हैं। प्रायः जानवरों की तरह रहते हैं। एक एक कोठरी में ५०-६० आदमी तक ठूसे जाते हैं। कभी तो वे शोर-गुल मचाते और कभी लड़ते-भिड़ते भी हैं। ऐसी स्थिति में बेचारे हिन्दुस्तानियों की क्या दुर्दशा होती होगी पाठक, सहज ही इसका अनुमान कर सकते हैं।

अन्य भारतीय कैदी।

सारे कैदखाने में, हमें छोड़ कर, दो ही चार और हिन्दुस्तानी कैदी थे। उन्हें काफिरों के साथ कोठरी में बन्द होना पड़ता था। तथापि मैंने देखा कि वे प्रसन्न रहते थे, और जब वे बाहर थे अर्थात् कैदखाने में न थे तब से उनकी तबियत अब बहुत अच्छी थी। उन्होंने प्रधान जेलर की कृपा प्राप्त कर ली थी। वे काम करने में भी तेज और होशियार थे। अतएव उन से जेल के अन्दर ही काम लिया जाता था। मो भी 'स्टोर' की मशीनें इत्यादि की देख-रेख तथा ऐसे ही काम जो न तो उन्हें अखरते ही थे और न मैले ही थे। वे हमारे भी बड़े सहायक हो गये थे।

रहने का स्थान।

हमें एक कोठरी सौंपी गई। उसमें १३ आदमियों के रहने की जगह थी। उन कोठरियों पर लिखा था—"काले

कर्जदार कैदी।" शायद इन कोठरियों में दीवानी मामलों में सजा पाये हुए कैदी रखे जाते होंगे। उनमें प्रकाश और हवा के लिए दो छोटी सी खिडकियां थीं जिनमें लोहे के मजबूत सांकचे लगे हुए थे। कोठरी में जितनी हवा आती थी, मेरे ख्याल में, काफी न थी। कोठरी की दीवारों पर टीन जडा हुआ था। इन में आधे आधे इञ्च के तीन सूराख थे, जिनमें कांच जडे हुए थे। जेलर उनमें छिपे छिपे ताक कर देखा करते कि कैदी क्या करते हैं। हमारी कोठरी से लगी हुई जो कोठरी थी उसमें काफिर कैदी थे। उनके संग काफिर, चीनी और 'कैपवोय' गवाह थे। ये सब एक संग इस लिए कैदखाने में रक्खे गये थे कि कहीं भाग न जाय।

हम सब के दिन में घूमने फिरने के लिए एक छोटी सी गली या बरामदा था। उस के आस पास दीवार थी। गली इतनी तंग थी कि उस में घूमना-फिरना कठिन सा था। सीमा-प्रान्त के कैदियों के लिए तो यह नियम था कि वे बिना इजाजत गली के बाहर न जाय। स्नान तथा पाखाने की जगह उसी बरामदे में थी। स्नान के लिए पत्थर के दो बड़े हौज थे और नहाने के लिए दो फव्वारे, दो टट्टियां और दो पेशाब-खाने। उन में परदे का कोई प्रबन्ध नहीं था। जेल के कानून में भी यह नियम था कि पाखाने ऐसे होने चाहिए कि जिन में कैदी अलग न रह सकें। अतएव दो तीन कैदियों को एक ही कतार में पाखाने के लिए बैठना पडता था। स्नान-घर का भी यही हाल था। पेशाबखाना तो खुली जगह में ही था। यह सब हमको पहिले पहल असह्य मालूम होता था। कितनों ही को तो इससे बडी घिन और तकलीफ होती थी। तथापि गहरा विचार करने पर यह जान पडता है कि जेलखाने में ऐसे काम

गागी तौर पर नहीं किये जा सक्ते और जाहिरा तौर पर करने में कोई खास दोष नहीं। अतएव धीरज रख कर ऐसी आदत डालने की जरूरत है। और इससे घबडाने अथवा चिन करने या ऊब ,उठने की आवश्यक्ता नहीं।

कोठरी के अन्दर, सोने के लिए, तीन इञ्च ऊंचे पाये वाली लकडी के तख्तों की चोकिया थीं। हर आदमी को पीछे से कम्बल और एक छोटा सा तकिया तथा बिछौने के लिए एक चटाई दी गई थी। कभी कभी तीन कम्बल भी मिल जाते थे। परन्तु यह मेहरबानी के तौर पर। ऐसे कडे बिछौने से कितने ही लोग घबडाते देखे जाते थे। साधारणत जिसे मुलायम सेज पर सोने की आदत हो, उसे ऐसा खुरदुरा कडा बिछौना खलता है। वैद्यकशास्त्र के नियम के अनुसार कडा बिछौना ही अच्छा समझा जाता है। अतएव यदि घर में भी हमें कडे बिछौने ही पर सोने की आदत हो तो जेल के बिछौने से तकलीफ नहीं होती। कोठरियों में हमेशा एक घडा पानी और रात में पेशाब करने के लिए कुछ पानी अलग दिया जाता था। क्योंकि रात में कोई कैदी बाहर नहीं निकल सकता। हरेक आदमी को आवश्यकता के अनुसार थोडा सा साबुन, एक गजी की तोलिया तथा एक लकडी का चमचा भी दिया गया था।

सफाई।

जेलखाने में सफाई बहुत अच्छी होती है। कोठरी की फर्श हमेशा जन्तु-नाशक (Phenyl) पानी से धोई जाती थी। उनमें हर रोज चूना पोता जाता था जिस से वे हमेशा नई मालूम हों। हम्माम और पाखाने भी नित्य साबुन तथा जन्तु-नाशक पानी (Phenyl) से साफ किये जाते थे।

सफाई का तो मुझे स्वयं शौक है। जब कई सत्याग्रही कैदी बाद में रह गये तब मैं स्वयं जन्तु-नाशक पानी (Ph nyl) से पाखाना धोता। पाखाना उठाने के लिए हमेशा नौ बजे कितने ही चीनी कैदी आते थे। उस के बाद यदि दिन में पाखाना साफ करना होता तो अपने ही हाथों से सफाई करनी पड़ती थी। पत्थर की चौकियां हमेशा रेती और पानी से धोई जाती हैं। अड़चन सिर्फ एक बात की है कि कैदियों में कम्बल और तकिये बदल जाने की बहुत सम्भावना रहती है। रोज धूप में कम्बल सुखाये जाने का नियम है। पर शायद ही इसका पालन किया जाता हो। जेल की गलियाँ हमेशा दो बार साफ की जाती थीं।

कुछ नियम।

जेल के कितने ही नियम सब लोगों के जानने योग्य हैं। शाम को साढ़े पांच बजे सब कैदी बन्द कर दिये जाते हैं। आठ बजे रात तक वे पढ़ और बातचीत कर सकते हैं। आठ बजेके बाद सब को सो जाना पड़ता है। यदि नींद न आती हो तो भी चुपचाप पड़े रहना चाहिए। आठ बजे के बाद बीच में बात करना जेल के नियम को भङ्ग करना है। काफिर कैदी इस नियम का यथोचित पालन नहीं करते। अतएव रात के पहरेदार उन्हें चुप करने के लिए " ठुला, ठुला " कह कर दीवारों पर लाठी ठोंका करते हैं। कैदी को बीड़ी पीने की सख्त ममानियत है। इस नियम की पाबन्दी बड़ी सरगर्मी से की जाती है। पर मैं देखता था कि बीड़ी पीने के आदी कैदी दबे-छुपे इस नियम का उल्लंघन करते थे। सबेरे साढ़े पांच बजे उठने का घण्टा बजता है। उस समय प्रत्येक कैदी को उठकर हाथ मुंह धो लेना और अपना बिछौना समेट

लेना चाहिए। सवेरे छः बजे कोठरी का दरवाजा खुलता है। उस समय प्रत्येक कैदी समेटे हुए बिछौने के पास अदब के साथ खड़ा मिलना चाहिए। रक्षक आकर प्रत्येक कैदी को गिन जाता है। इसी तरह कोठरी बन्द करते समय हर एक कैदी को बिछौने के पास खड़ा रहना चाहिए। सिवा कैदखाने की और कहीं की कोई चीज कैदी के पास न होनी चाहिए। कपड़ों के सिवा और कोई वस्तु गवर्नर की आज्ञा बिना पास रखने की मनाही है। हर एक कैदी के ऊपरी कपड़े के एक बटन पर एक छोटी सी थैली सिली रहती है। उसमें कैदी का टिकट रहता है। टिकट पर उसका नम्बर, सज़ा का ब्योरा, उसका नाम, इत्यादि बातें लिखी रहती हैं। साधारण नियमों के अनुसार दिन को कोठरी में रहने की आज्ञा नहीं है। जिन्हें काम पर जाना होता है वे तो कोठरी में रह ही नहीं सकते। परन्तु बेकार कैदी भी नहीं रह सकते। उन्हें अहातों में रहना पड़ता है। हमारे सुभीते के लिए गवर्नर ने एक मेज़ और दो बेंचें कोठरी में रखने की इजाज़त दी थी। उससे हमें बड़ा आराम मिला।

नियम है कि दो मास की सज़ा वाले कैदी के बाल और मूछ काट डाली जाय। हिन्दुस्तानियों पर इसका व्यवहार सख्ती से नहीं किया जाता। जो इनकार करता है, उसकी मूँछ रहने दी जाती है। इस विषय की एक दिल्लगी सुनिए। मैं तो जानता ही था कि कैदियों के बाल कटवाए जाते हैं। और यह भी खबर थी कि ये बाल कैदियों के आरोग्य के लिए कटवाए जाते हैं। मैं इस नियम का कायल हूँ। मुझे यह नियम आवश्यक मालूम होता है। जेलखाने में कंघी इत्यादि बाल साफ रखने की चीज़ों का प्रबन्ध नहीं, और बाल अगर

साफ न रक्खे जाय तो फोड़े-फुन्सी होने का डर रहता है। फिर भी गर्मी के दिनों में तो बाल असह्य हो जाते हैं। कैदियों को आईना मिलता नहीं। मूछ मैली या गन्दी होने की सम्भावना बनी रहती है। खाते समय रूमाल भी नहीं होता। लकड़ी के चमचे से खाने में दिक्कत पड़ती है। लम्बी मूछ हो तो जूठन मूछ में ही चिपकी रहती है। मैं चाहता था कि क़ैद का पूरा अनुभव किया जाय। इस लिए मैं ने मुख्य दारोगा से कहा कि मेरे बाल, और मूछ कटवा दीजिए उसने कहा, गवर्नर ने सख्त ममानियत की है। मैंने कहा— मुझे मालूम है कि गवर्नर मुझे बाध्य नहीं कर सकते, परन्तु मैं तो अपनी राजी से बाल कटवाना चाहता हूं। उसने कहा— गवर्नर से अर्ज करो। दूसरे दिन गवर्नर ने आज्ञा तो दे दी, पर कहा-कि दो महीने में अभी तो तुम्हारे दो ही दिन बीते हैं, इतने ही में तुम्हारे बाल कटवाने का अधिकार मुझे नहीं। मैंने कहा—यह मैं जानता हूँ, परन्तु अपनी आराम के लिए, मैं अपनी इच्छा से उन्हें कटवाना चाहता हूँ। इस पर उसने हंस कर बात टाल दी। पीछे से मुझे मालूम हुआ कि गवर्नर को बहुत शक और डर हो गया था कि मेरी इस बात में कोई रहस्य तो नहीं है? उसके मत्थे मढ कर कहीं जबरदस्ती बाल मूछ काट डालने का वावेला तो मैं न मचाऊं? परन्तु मैं बार बार कहता ही रहा। मैंने यहां तक कह दिया कि मैं लिखे देता हूँ कि मैं अपनी इच्छा से बाल कटवाता हूं। तब कहीं गवर्नर का शक दूर हुआ और उसने दारोगा को जबानी हुक्म दिया कि इन्हें कैंची दे दो। मेरे साथी कैदी मिस्टर पी० के० नायडू बाल बनाना जानते थे। मैं खुद भी थोड़ा बहुत जानता हूं। मुझे बाल और मूछ काटते देख तथा उस

का कारण समझ कर औरों ने भी वैसा ही किया। कितनों ही ने सिर्फ बाल ही कटाये। मिस्टर नायडू तथा मै दोनों, कोई दो घण्टे हमेशा हिन्दुस्तानी कैदियों के बाल काटने में खर्च किया करते। मेरी राय में इस से आराम और सुभीता दोनों है। इससे कैदी देखने में भी भले मालूम होते थे। जेल में अस्तुरा रखने की सख्त मनाही है। सिर्फ कैंची ही रख सकते हैं।

देख-भाल।

कैदियों की देख-भाल करने के लिए जुदे जुदे कर्मचारी आते हैं। उन के आते समय प्रत्येक कैदी को एक कतार में हो जाना चाहिए। कर्मचारी के आते ही टोपी उतार कर सलाम करना चाहिए। सब कैदियों के पास अंगरेजी टोपियां थीं। अतएव उन के उतारने में कोई दिक्कत न पड़ती थी। और टोपी उतारना बाकायदा ही नहीं बल्कि उचित भी था। जब कोई कर्मचारी आता, एक कतार में होने का हुक्म "फाल इन" इन शब्दों में दिया जाता। "फाल इन" शब्द हमारे कानों को बहुत परिचित हो गये थे। इन शब्दों का अर्थ यह है कि एक कतार में होकर ध्यानपूर्वक खड़े हो जाओ। दिन में चार पाँच बार इस तरह होता। एक कर्मचारी, जो नायब दारोगा कहलाता था, जरा अकड़बाज था। इस लिए उस का नाम हिन्दुस्तानी कैदियों ने "जनरल स्मट्स" रख दिया था। सबेरे वह बहुत तड़के कितनी ही बार सब से पहिले आ जाता और फिर शाम को भी चक्कर लगा जाता। साढ़े नौ बजे डाक्टर आता। वह बहुत भला और दयालु जान पड़ता था। हमेशा बड़े प्रेमपूर्वक समाचार पूछता। जेल के नियमों के अनुसार प्रत्येक कैदी को पहिले

दिन खुले-आम नगा होकर अपना शरीर डाक्टर को दिखलाना पडता है। परन्तु डाक्टर ने हम पर यह नियम नहीं चलाया और जब हिन्दुस्तानी कैदी बहुत हो गये तब उन्होंने कहा कि अगर किसी को खुजली इत्यादि की बीमारी हो जाय तो हम से कहना ताकि हम अकेले में ले जाकर उस की देखभाल कर लेंगे। साढे दस या ग्यारह बजे गवर्नर तथा मुख्य दारोगा आते। गवर्नर बडा मजबूत, बडा न्यायशील, और बडा शान्त स्वभाव था। उस का हमेशा एक ही सवाल होता-तुम सब अच्छी तरह तो हो? तुम्हें कोई चीज दरकार है? तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है? और जो कोई किसी चीज को चाहता या शिकायत करता तो वह बडे ध्यान से सुनता। यथासम्भव वह उन की इच्छा भी पूरी करता। जो शिकायत उसे ठीक जचती उस का भी काफी इन्तजाम करता। कभी कभी डिप्टी गवर्नर भी आता। वह भी भला आदमी था। परन्तु सब से भला, सुशील और मिलनसार तो हमारा खास मुख्य दारोगा ही था। वह स्वाय बडा धार्मिक था। वह हम से बडा अच्छा और सभ्य व्यवहार करता। अतएव हर एक कैदी मुक्तकण्ठ से उसका गुण-गान करता था। कैदियों को उनके अधिकारों से लाभ उठाने देने का वह बडा ध्यान रखता। कैदियों के छोटे छोटे कसूरों को वह माफ कर देता। हम से तो वह यह समझ कर बहुत स्नेह रखता था कि हम सब निरपराध हैं। अपनी सहानुभूति प्रगट करने के लिए वह कितनी ही बार हमारे पास आकर बातचीत किया करता।

हिन्दुस्तानी कैदियों की वृद्धि।

मैं कह चुका हूं कि पहले हम ही पांच आदमी सत्याग्रही

कैदी थे। १४ जनवरी, मंगलवार, को मिस्टर थम्बी नायडू जो चीफ पिकेट थे, तथा चायनीज एसोसियेशन के अध्यक्ष मिस्टर क्वीन जेल में आये। उन्हें देख कर सब खुश हुए। १८ जनवरी को और १४ आदमी आये। उनमें समुदर खा भी थे। उन्हें दो महीने कैद की सजा मिली थी। शेष १३ में मदरासी, कानमीया और गुजराती हिन्दू थे। वे सब बिना लाइसेन्स फेरी का पेशा करने के अपराध में गिरफ्तार हुए थे। उन पर दो पाउ जुर्माना हुआ था। नियम था कि जो दो पाउ न दाखिल करे वह १४ दिन जेल भोगे। उन्होंने साहस करके जुर्माना न दिया और कैदखाने में आ गये। २१ जनवरी मंगलवार को ७६ आदमी और भी आये। उन्हीं में नवाब खा भी थे, जिनकी सजा दो महीने की थी। बाकी दो पोंड जुर्माना या १४ दिन कैद की सजा वाले थे। इस दल में कितने ही गुजराती हिन्दू थे। कानमीया और मदरासी भी थे। २२ जनवरी, बुधवार को ३५ आदमी फिर आ दाखिल हुए। २३ को ३, २४ को १, २५ को २, २८ को ६ और उसी दिन शाम को ४ आदमी और भी आये। २६ को फिर ४ कानमीये आये। अर्थात् २६ जन० तक सब मिला कर १५५ सत्याग्रही कैदी वहा हो गये थे। ३० जनवरी गुरुवार को मुझे प्रिटोरिया (ट्रांसवाल) ले गये थे। पर मुझे याद है कि उस दिन भी ५६ कैदी आये थे।

भोजन।

भोजन का सवाल ऐसा है कि इस पर कितने ही आदमियों को कितनी ही बार विचार करना चाहिए। परन्तु कैदियों के लिए तो उस पर और भी अधिक ध्यान देने की जरूरत है। उनका तो जियादा दारोमदार अच्छे भोजन पर

ही है। भोजन के सम्बन्ध में यह नियम है कि जेल की तरफ से जो कुछ मिले वही खाय, बाहर का नहीं। सोल्जरों को जो भोजन मिलता है वही खाना पडता है। पर कैदियों और सोल्जरों में बहुत अन्तर है। सोल्जरों के लिए उन के भाई भतीजे और चीजें भेज सकते हैं और वे उन्हें ग्रहण कर सकते हैं, पर कैदी तो और चीजें ले ही नहीं सकता, उसे तो मना ही है। भोजन की तकलीफ कैदखाने की बडी भारी निशानी है। बातचीत में अक्सर देखा जाता है कि जेल के अधिकारी कहते हैं कि कैद में स्वाद का क्या काम? लजीज चीजें जेल में नहीं दी जातीं। जब जेल के डाक्टर के साथ बातचीत करने का मौका मुझे मिला, मैंने उन से कहा कि रोटी के साथ चा अथवा घी या और कोई चीज मिलनी चाहिए। तब उस ने कहा—"यह तो तुम स्वाद के लिए चाहते हो, जेल में यह न मिलेगा।"

अब आप जेल के भोजन का वर्णन सुनिए। जेल के नियम के अनुसार हिन्दुस्तानी कैदी को पहिले हफ्ते में नीचे लिखी चीजें दी जाती हैं।

सवेरे मकई के बारह औंस आटे की लपसी (पू पू) बिना घी शक्कर के।

दोपहर को चार औंस चावल और एक औंस घी।

शाम को चार दिन १२ औंस मकई के आटे की लपसी (पू पू), तीन दिन बारह औंस भुने हुए दाल (चिनिस) और नमक।

काफिर को जो भोजन दिया जाता है उसी के आधार पर यह तजवीज की गई है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि शाम

को काफिरों को मई मिली हुई मक्ई और चरबी दी जाती है किन्तु हिन्दुस्तानियों को इसके बदले चावल मिलता है।

दूसरे सप्ताह में और उसके बाद हमेशा मक्ई के आटे के साथ दो दिन भूने आलू और दो दिन कोई दूसरा शाक, जैसे काद्दू इत्यादि, दिया जाता है। जो मांस भोजी हैं उन्हें दूसरे हफ्ते से हर शनिवार को तरकारी के साथ मांस भी मिलता है।

जो कैदी पहिले आये थे उन्हों ने निश्चय कर लिया था कि हम सरकार से किसी प्रकार की रियायत करने की प्रार्थना नहीं करेंगे। जैसा खाना मिलेगा उसी से काम चलायेंगे। सच पूछिए तो पूर्वोक्त भोजन हिन्दुस्तानियों के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। काफिरों का तो मकई रोज का खाना है। अतएव वह उन्हें बहुत मुआफिक हो सकता है और उसे खाकर वे कैदखाने में भी हृष्टपुष्ट रह सकते हैं परन्तु भारत-वासियों के लिए तो चावल को छोड़कर कोई भी चीज मुआ-फिक नहीं समझी जाती। विरला ही हिन्दुस्तानी मकई का आटा खाता होगा। खाली मकई की दाल यानी बीन्स खाने की तो आदत हमें थी ही नहीं और तरकारी वगैर तो जिस ढंग से वे लोग बनाते हैं वह हिन्दुस्तानियों को पसन्द नहीं। वे तरकारी न तो साफ करते हैं न उसमें मसाला इत्यादि ही छोड़ते हैं। बल्कि गोरों के लिए जो तरकारी बनती है प्रायः उस के छिलके की तरकारी काफिरों के लिए बनाई जाती है। नमक के अतिरिक्त उसमें और कोई मसाले की चीज नहीं डाली जाती। शक्कर की तो बात ही जाने दीजिए। अतएव भोजन की बात सबको खलने लगी। पर हमने निश्चय किया था कि हम सत्याग्रही जेल के अधिकारियों के हाथ न जोड़ेंगे। अत-

पर इस विषय में भी हमने कोई मिहरबानी न चाही और पूर्वोक्त भोजन पर ही संतोष किया।

गवर्नर ने हमसे पूँछताछ की तो उसके जवाब में हमने कहा कि, "भोजन अच्छा नहीं। पर सरकार से हम कोई रियायत-कोई मिहरबानी-नहीं चाहते। सरकार ही यदि भोजन में कुछ सुधार करे तो ठीक है, नहीं तो इस नियम के अनुसार जो खाना मिलता है हम वही खायेंगे।"

पर यह निश्चय अधिक दिनों तक नहीं टिका। और दूसरे लोग जब आये तब हम सबने सोचा कि इन लोगों को भी भोजन के दुःख में शरीक करना उचित नहीं। उन्हें जेल में आना पड़ा यही बहुत है। और उनके लिए सरकार से अलग रियायत चाहना उचित है। इस ख्याल से, गवर्नर से, इस विषय की बात चीत छेड़ दी। गवर्नर से कहा कि-हम जैसा हो वैसा भोजन ग्रहण कर सकते हैं। पर पीछे से आये हुए लोग वैसा नहीं कर सकते। गवर्नर ने विचार करके जवाब दिया कि-सिर्फ धर्म के लिहाज से अगर अलग रसोई करना चाहो तो कर सकते हो, परन्तु भोजन तो जो मिलता है वही मिलेगा। दूसरी तरह का खाना देना मेरे काबू का नहीं।

इतने में ऊपर कहे अनुसार १४ हिन्दुस्तानी कैदी और आ गये। उनमें से कितनों ही ने तो 'पू पू' खाने से इनकार कर दिया और भूखे ही दिन काटने लगे। तब मैने जेल के नियम पढ़े। मुझे ज्ञात हुआ कि इस विषय की प्रार्थना Directer of Prisons से की जाती है। तब गवर्नर से मंजूरी लेकर नीचे लिखे मुताबिक दरख्वास्त भेजी गई—

"हम नीचे दस्तखत करने वाले कैदी अर्ज करते हैं कि हम सब २१ एशियाटिक कैदी हैं। उनमें १८ हिन्दुस्तानी

और बाकी चीनी है। ?= हिन्दुस्तानियों को भोजन में सवेरे 'पू पू' (लपसी) मिलता है और बाकी लोगों को चावल और घी, तथा तीन बार बीन्स और चार बार 'पू पू'। शनिवार के दिन आलू और रविवार को सब्जी दी जाती है। धर्म के लिहाज से हम कोई मांस नहीं खा सकते। कितनों ही को तो मांस खाना धर्म-विरुद्ध है। और कितने ही हलाल मांस न होने के कारण नहीं खा सकते। चीनियों को चावल के बदले मक्ई दी जाती है। सब अर्जदारों में अधिकांश को यूरोपियन ढंग के भोजन की आदत है। और वे रोटी तथा आटे की अन्य चीजें खाते हैं। हममें से कितनों ही को 'पू पू' खाने की बिल्कुल टेव नहीं। इससे उनको अजीर्ण हो जाता है। हम में से सात आदमियों ने तो सवेरे का भोजन बिल्कुल किया ही नहीं। सिर्फ, किसी समय कुछ चीनी कैदियों ने दया करके अपनी रोटी में से एक दो टुकड़े दे दिये थे वही उन्होंने खाये थे। यह हाल हमने गवर्नर से कहा। उन्होंने कहा कि चीनियों के पास से जो रोटियां लीं यह अपराध समझा जाता है। हमारी राय में पूर्वोक्त भोजन हमारे लिए मुजिर है। लिहाजा हम अर्ज करते हैं कि 'पू पू' बन्द करके हमें यूरोपियन नियम के अनुसार भोजन मिलना चाहिए। अथवा ऐसा भोजन दिया जाय जो हमें हानिकर न हो। हमें जो खाना दिया जाय वह हमारी प्रकृति और रीति-रिवाज के अनुसार होना चाहिए।

"काम बहुत जल्दी का है, अशद जरूरी है। अतएव अर्जदार अर्ज करते हैं कि इसका उत्तर हमें तार के जरिए दिया जाय।"

इस अर्जी पर हम २१ आदमियों ने दस्तखत किये थे।

दस्तखत हो चुकने के बाद अर्जी भेजी जा रही थी कि ७६ भारतीय कैदी और आ पहुंचे। उन्हें भी "पू पू" से नफरत थी। अतएव दरख्वास्त के नीचे इतना मजमून और बढ़ाया गया कि, "७६ आदमी और आये हैं। पूर्वोक्त भोजन पर उन्हें भी एतराज है। अतएव शीघ्रही प्रबन्ध होना चाहिए।" मैंने गवर्नर से निवेदन किया कि इस दरख्वास्त को तार से भेज दीजिए। तब उसने टेलीफोन के द्वारा डिरेक्टर से आज्ञा लेकर 'पू पू' के बदले चार औंस रोटी का हुक्म दिया। इस से लोग बड़े खुश हुए। तब २२ तारीख से सबेरे हमें चार औंस रोटी और शाम को भी 'पू पू' के दिन रोटी दी जाने लगी। शाम को आठ औंस रोटी की आज्ञा थी। यह सिलसिला फिर भी दूसरा हुक्म होने तक कायम ही रहा। इसके लिए गवर्नर ने एक कमिटी नियुक्त की थी और उसमें आटा, घी, चावल तथा दाल दिये जाने की चर्चा चल रही थी। इतने ही में हम छोड़ दिये गये। अतएव आगे कोई बात न हुई।

२१ पहिले, जब हम आठ ही आदमी थे, हम कोई रसोई न बनाते थे। भात अच्छा नहीं बनता था और तरकारी की बारी के दिन तरकारी तो बड़ी ही बुरी तरह पकाई जाती थी। इससे हमने रसोई पकाने की भी आज्ञा प्राप्त की। पहिले दिन मिस्टर कडवा रसोई बनाने गये। उसके बाद मिस्टर थम्बी नायडू तथा मिस्टर जीवन ये दो आदमी खाना पकाने जाते। आखीर के दिनों में तो इन दोनों सज्जनों को कोई दो सौ आदमियों की रसोई तैयार करनी पड़ी थी। भोजन एक बार बनाया जाता था। हफ्ते में दो बार सब्जी की बारी आती, तब रोज दोनों बार पकाना पड़ता था। मिस्टर थम्बी

मायङ्क यहुन मिहनत करते थे। सबको परोसने या बाटने का काम मेरे जिम्मे था।

पूर्वोक्त दरख्वास्त में यह नहीं कहा गया था कि खास हमारे ही लिए अलग भोजन का प्रबन्ध किया जाय बल्कि हिन्दुस्तानी मात्र के लिए फेरफार करने की सूचना उसमें थी। गवर्नर से भी यही बात-चीत हुई थी। उसने मजूर भी किया। अब भी आशा की जा सकती है कि जेल में हिन्दुस्तानी कैदियों के भोजन में सुधार हो सकता है। इसके सिवा तीनों चीनियों को चावल के बदले हमसे भिन्न भोजन मिलता था। इससे और भी असन्तोष फैलता था और यह ध्वनित होता था कि चीनी हमसे हलके (नीचे) समझे जाते हैं। अतएव उनकी तरफ से मैंने गवर्नर तथा मिस्टर प्लेफर्ड से प्रार्थना की। और अन्त में आज्ञा मिली कि चीनियों को भी हिन्दुस्तानियों की तरह भोजन दिया जाय।

योरोपियनों को जिस तरह का भोजन मिलता था, अब यह सुनिए। उन लोगों को सवेरे नाश्ता के लिए आठ औन्स 'पू पू' और रोटी मिलती है। दोपहर के भोजन में भी हमेशा रोटी और शुरवा अथवा रोटी और मास तथा आलू, अथवा सब्जी और शामको रोज रोटी तथा 'पूपू'। अर्थात् योरोपियनों को तीन बार रोटी मिलती है इसलिए वे 'पूपू' की विशेष परवा नहीं करते, मिले तो भला न मिले तो भला। इसके सिवा उन्हें जो शुरवा और गोश्त हमेशा मिलता था सो [ाते में। और कितनी ही बार उन्हें चाय या कोको भी दिया जाता था। इससे यह जाना जाता है कि काफिरों को उनके मुआफिक और योरोपियनों को उनके मुआफिक भोजन दिया जाता था। हिन्दुस्तानी बेचारे अधर में ही लटकते

रहते। उन्हें अपने ढग का भोजन कभी नसीब नहीं हुआ। योरोपियनों का भोजन उन्हें दिया जाय तो गोरों को लाज आती थी। और वे इस बात का विचार ही क्यों करने लगे कि हिन्दुस्तानियों को उनका कौनसा खाना दिया जाय। अतएव वे काफिरों की सतर में ढकेल दिये गये।

यह अन्धेर आज तक जारी है। कोई आंख उठा कर उस पर निगाह नहीं डालता। इसे मैं अपने सत्याग्रह की कमजोरी समझता हूं। क्योंकि एक ओर जब कुछ हिन्दुस्तानी कैदी तो चोरी से—छिप-कर—जैसा चाहिए मगा कर खाना खाते हैं, और इसके लिए उन्हें कुछ हानि भी नहीं उठानी पड़ती, तब दूसरी ओर कुछ भारतीय कैदी जो मिलता है वही खाना खाते हैं और अपने निज के सिर पर आई विपदा की कहानी कहने में शरमाते हैं। इससे बाहर वाले अंधेरे में ही टटोलते हैं। यदि हम सचाई से काम ले और अन्याय का ध्यान करते रहे तो ऐसी तकलीफ उठानी ही न पड़े। स्वार्थ को छोड़ कर परमार्थ की ओर नजर रखने से तो दुःख की दवा फौरन ही मिलती है।

परन्तु जिस तरह इस प्रकार के दुःख की दवा करना आवश्यक है उसी तरह एक दूसरा विचार करना भी परमावश्यक है। कैदी होने से कितने ही सङ्कट सहने पड़ते हैं। यदि कष्ट न हो तो फिर कैदखाना ही किस काम का? जो अपने मन को दबा कर रख सकते हैं वही कष्ट को सुख समझ कर जेल में आनन्द से रह सकते हैं। अतएव कैदी इस बात को नहीं भूलता कि जेलखाने में कष्ट मिलता है। और उसे औरों के लिए भी यह न भूल जाना चाहिए। इसके बिना हमें अपनी रस्मोरिवाज इस तरह के डाल लेना चाहिए

कि उसमें अधिक रद्दोबदल करने की जरूरत न पड़े। "जैसा देश वैसा वेश" यह कहावत प्रसिद्ध ही है। दक्षिणी अफ्रिका में रह कर हमें ऐसी ही आदत डालनी चाहिए जिसमें हमें यहां का अन्न-जल मुआफिक आ जाय। 'पू पू' गेंहू के सदृश अच्छा, सादा और सोंधा भोजन है। यह भी नहीं कह सकते कि उसमें स्वाद नहीं। कभी 'पू पू' गेंहू से भी बढ़-चढ़ जाता है। मेरी राय में तो जिस देश में हम रहते हों उस देश की प्रतिष्ठा की दृष्टि से—आदर के लिहाज से—यहां की जमीन में जो अन्न पैदा होता हो वह यदि खराब न हो तो अपने काम में लाना उचित है। कितने ही गोरों को 'पू पू' पसन्द है और वे हमेशा सवेरे उसी को खाते हैं। 'पू पू' के साथ दूध, शक्कर अथवा घी खाने से वह स्वादिष्ट बन जाता है। इन कारणों से, तथा हमें अभी फिर जेल जाना पड़ेगा, इस खयाल से हम को चाहिए कि हम 'पू पू' खाने की आदत डालें। प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिये यह अभ्यास अनिवार्य होना चाहिए। यदि हमने ऐसा किया तो फिर जब कभी हमें 'पू पू' से काम पड़ेगा, तब वह हमें खलेगा नहीं। अपने देश के लिए हमें अपनी कितनी ही आदतें छोड़नी पड़ेंगी। इसके बिना गुजर नहीं। जो जो जातियां आगे बढ़ी हैं उन्होंने, जो बातें हानिकर नहीं हैं अर्थात् विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनको स्वीकार कर लिया है। मुक्ति-फौज वालों को देखिए, जिस देश में वे जाते हैं उस देश के रीति-रिवाज, पोशाक-पहनाव इत्यादि को, वे अगर बुरे न हों, अपना कर वहां के लोगों का मन हरण कर लेते हैं।

रोगी।

हम डेढ सौ कैदियों में एक भी बीमार न होता तो

बडे ताज्जुर की यात थी। मिस्टर समुन्दर ख्वा पहिले रोगी थे। वे तो जब जेल में आये तभी बीमार थे, सो अस्पताल पहुंचाये गये। मिस्टर फटवा को सन्धिवात की बीमारी थी। कितने ही दिन तो जेल में ही मरहम इत्यादि दवायें डाक्टर से लीं। परन्तु पीछे से वे भी अस्पताल गये। दूसरे दो कैदी चक्कर (Giddiness) आने की बीमारी से तङ्ग थे। वे भी अस्पताल पहुंचाये गये। वहां हवा बडी गरम थी। कैदियों को धूप में रहना पडता था। इससे किसी किसी को चक्कर आ जाया करता। उनकी सेवा-शुश्रूषा यथेष्ट की जाती थी। अन्तिम दिनों में मिस्टर नवाब खा भी बीमार हो गये। डाक्टर ने उन्हें दूध इत्यादि देने की आज्ञा दी। तब उनकी तबीयत जरा सँभली। तथापि समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि हम सत्याग्रही कैदियों का स्वास्थ्य अच्छा रहा।

स्थान की कमी।

मैं पहिले ही कह चुका हूं कि जिस कोठरी में हम लोग रक्खे गये थे उसमें सिर्फ ५१ आदमियों के लिए जगह थी। बरामदे भी उतने ही आदमियों के लिए थे। परन्तु जब ५१ के बजाय १५१ से भी ज्यादा कैदी हो गये तब तो हमें बडी कठिनाई का सामना करना पडा। गवर्नर ने बाहर डेरे लगवा दिये बहुत से कैदी उनमें रहने लगे। आखीरी दिनों में १०० कैदी बाहर सोने जाते थे। पर वे सवेरे फिर आ जाते, इससे बरामदा भर जाता। उसमें जगह बिलकुल न रहती। उतनी जगह में कैदी बडी तकलीफ से रहते थे। इसके सिवा अपनी २ टेव के अनुसार लोग इधर उधर थूका भी करते। इससे गन्दगी फैलती और बीमारी पैदा होने का डर रहता। सौभाग्य से मेरे समझाने-बुझाने पर लोग मान भी जाते थे।

वे बरामदा साफ करने में भी मदद देते थे। बरामदे तथा पाखाने की सफाई पर बहुत ध्यान दिया जाता था, यही कारण है कि लोग बीमार न हुए। इतने कैदियों को इतनी तङ्ग जगह में रखना, यह सरकार का दोष था। इसे सब स्वीकार करेंगे। जब कि जगह तङ्ग थी तब सरकार का कर्तव्य था कि इतने कैदी वहां न भेजती। जो यह आन्दोलन अधिक दिनों तक और अधिक जोर शोर से चलता तो सरकार कभी जियादा कैदियों का समावेश न कर सकती।

पठन-पाठन।

मैं पहिले ही कह आया हूं कि गवर्नर ने हमें जेल में मेज देने की आज्ञा दे दी थी। साथ ही दावात-कलम भी मिली थी। और जेल से सम्बन्ध रखने वाली एक लाइब्रेरी भी थी। कैदियों को उसमें से पुस्तकें मिलती थीं। वहां से मैंने 'कारलाइल' की पुस्तक तथा बाइबिल ली थी। एक चीनी दुभाषिया (इंटरप्रीटर) था। उसने पहिले ही से अंगरेजी कुरानशरीफ, 'हक्सले' के भाषण, बार्नस, बान्सन और स्काट के जीवन-वृत्तान्त (कारलाइल कृत) तथा बेकन के नीति-विषयक निबन्ध नामक पुस्तकें ले रक्खी थीं। मेरे निज की किताबों में से इतनी किताबें मेरे पास थीं—मणीलाल नथुभाई की टीका वाली गीता, तामिल पुस्तकें, मोलवी साहिब की दी हुई उर्दू किताबें, टालस्टाय के लेख और रस्किन तथा सुकरात के लेख। इन में से बहुत सी पुस्तकें मैंने जेल में प्रथम बार अथवा पुनर्वार पढ़ीं। तामिल का अध्ययन नियम-पूर्वक करता था। सबेरे गीता, और दोपहर को अधिकतर कुरान शरीफ पढ़ा करता। शाम को मिस्टर फोरटुन को बाइबिल पढ़ाता। मिस्टर फोरटुन चीनी क्रिस्तान हैं। वे अंगरेजी पढ़ना

चाहते थे। अतएव उन्हें बाइबिल के भाग में अङ्गरेजी पढ़ाता था। यदि पूरे दो महीने जेल में रहना पड़ा होता तो कारलाइल की एक पुस्तक तथा रसकिन की पुस्तकों का भाषान्तर करने की इच्छा थी। हा, मुझे स्वीकार है कि मैं पूर्वोक्त पुस्तकों में व्यस्त रह सकता था। और इस कारण यदि मुझे दो मास और कैद की सजा मिलती तो मैं हिम्मत न हारता, यही नहीं बल्कि उस अवधि में मैं अपने ज्ञान की बहुत कुछ वृद्धि कर सकता और पूर्णत सुख-चैन से रहता। इसके सिवा मैं यह भी मानता हूँ कि जिन्हें अच्छी २ पुस्तकें पढ़ने का शौक है वे हर कहीं एकान्त पा सकते हैं। मेरे सिवा कैदी भाइयों में पठन-प्रिय थे-मिस्टर सी० एम० पिल्ले, मिस्टर नायडू तथा चीनी सज्जन। दोनों नायडुओं ने गुजराती पढ़ना आरम्भ किया था। पीछे से कितनी ही गुजराती गानों की पुस्तकें आई थीं। उन्हें बहुत लोग पढ़ा करते थे। पर इसे मैं पढ़ना नहीं कहता।

कवायद।

जेल में सारे दिन पढ़ा नहीं जा सकता। और अगर यह सम्भव होता भी तो इस में नुकसान ही होता। अतएव बड़ी मुश्किल से हमने कवायद और कसरत करने की इजाजत गवर्नर और दारोगा से ली। दारोगा बड़ा भला आदमी था। वह खुशी खुशी हमें शाम को कवायद सिखाता। इससे बड़ा लाभ होता। जियादा दिन अगर कवायद का सिलसिला जारी रहता तो हम सब को बहुत फायदा होता। परन्तु जब बहुत हिन्दुस्तानी आ गये तो दारोगा का काम बढ़ गया और मैदान में जगह कम हो गई। इन कारणों से कवायद बन्द हो गई। तथापि मिस्टर नवाब खाँ साथ थे।

इस से घरेलू ढंग में उनके जरिये कवायद होती रहती। इसके सिवा गवर्नर की परवानगी से हमने सीने की मेशीन चलाने का काम भी आरम्भ किया था। हम कैदियों का झोला बनाना सीखते थे। मिस्टर टी० नायडू तथा मिस्टर ईस्टन इस काम में तेज थे। अतएव वे जल्दी सीख गये। पर मुझे वैसी सफलता न मिली। मैं पूरा सीखने न पाया था कि एकवारगी कैदी बढ़ गये और काम अधूरा छूट गया। इस से पाठक समझ सकते हैं कि मनुष्य की इच्छा हो तो वह 'जङ्गल में मङ्गल' कर सकता है। इस तरह एक के बाद दूसरा काम तजवीज करते रहने से किसी कैदी को जेल का समय भारू नहीं मालूम होता। बल्कि वह अपने ज्ञान और शक्ति की वृद्धि कर के वहां से बाहर होता है। कितने ही दृष्टान्त मिले हैं कि केदखाने में नेकनीयत आदमियों ने बड़े भारी भारी काम कर डाले हैं। 'जान बनीयन' ने कैदखाने में बड़े कष्ट सह कर संसार में अमर ग्रन्थ—पिलग्रिम्स प्रोग्रेस—की सृष्टि की है। अंगरेज बाइबिल के बाद इसे ही प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। मिस्टर तिलक ने बम्बई के नौ महीने की जेल में 'ओरायन' नाम की पुस्तक लिखी। अतएव जेल में, या दूसरी जगह, सुख मिलेगा या दुःख, चंगे रहेंगे या बीमार, इसका निपटारा अधिकांश में हमारे निज के मन पर अवलम्बित है।

भेंट।

जेल में हमसे मिलने कितने ही अंगरेज आते। साधारण नियम यह है कि एक महीने के भीतर कोई भी किसी भी कैदी से भेंट नहीं कर सकता। उसके बाद हर महीने एक रविवार को एक आदमी मिल सकता है। विशेष कारण से इस नियम में परिवर्तन हो सकता है। इस परिवर्तन से

मिस्टर फिलिप्स ने लाभ उठाया। हमारे जेल में पहुंचने के तीसरे ही दिन मिस्टर फोरटुन से, जो चीनी किरस्तान हैं, मिलने के लिए मि० फिलिप्स ने इजाजत चाही और उन्हें आज्ञा मिल भी गई। मिस्टर फोरटुन से मिलते समय वे महाशय मुझसे और कैदियों से भी मिले। उन्होंने हम सब से धैर्य और साहस की बातें करके अपने रिवाज के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना की। मिस्टर फिलिप्स इस तरह तीन बार मिले। मि० डेविस भी एक पादड़ी हैं। वे भी हम से मिले। मि० पोलक और मिस्टर कोअन खास तौर पर इजाजत लेकर मिलने आये थे। उन्हें तो सिर्फ आफिस के काम के लिए आने की इजाजत मिली थी। जो लोग इस तरह मिलने आते हैं उनके साथ जेल का दारोगा रहता है और उसके सामने सब बात-चीत करनी पड़ती है। "ट्रान्सवाल लीडर" के स्वामी, मिस्टर कार्टराइट, विशेष आज्ञा लेकर तीन बार मिले। वे भी सुलह कराने के ही उद्देश्य से आते। अतएव उन्हें खानगी तौर पर—दारोगा की गैरहाजिरी में—हमसे मिलने की आज्ञा थी। पहिली भेंट में कार्टराइट साहब यह ज्ञात कर गये थे कि हिन्दुस्तानी जनता क्या चाहती है? किस बात का वह स्वीकार करेगी? दूसरी मुलाकात के समय वे अन्य अंगरेज सज्जनों को लेकर आये। साथ में एक लिखा हुआ कागज—इकरारनामा—भी लेते आये। उसके मजमून में आवश्यक रद्दोबदल करने के उपरान्त मि० क्वीं, मिस्टर नायडू तथा मैंने उस पर दस्तखत बनाये। इस कागज तथा इस राजीनामे के विषय में "इण्डियन ओपिनियन" तथा अन्य स्थानों में बहुत कुछ लिखा गया है। अतएव यहां उस के विस्तार करने की जरूरत नहीं। चीफ मैजिस्ट्रेट मिस्टर प्लेकर्ड भी एक बार मिलने आये थे। उन्हें तो

हमेशा भेंट करने का अधिकार है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि वे खास हमीं से मिलने आये थे या हम सब लोगों को जेलखाने में देखने एक बार आ गये थे।

धर्म की शिक्षा।

वर्तमान समय के पश्चिमी देशों में कैदियों को धर्म की शिक्षा देने का रिवाज देखा गया है। जोहान्सबर्ग की जेल में कैदियों के लिए अलग गिरजा घर है। उसमें सिर्फ गोरे कैदी ही जा सकते है। मैंने अपने तथा मिस्टर फोग्डुन के लिए खास तौर पर इजाजत चाही। पर गवर्नर ने कहा कि इस गिरजाघर में अकेले गोरे क्रिस्तान ही जा सकते है। हर रविवार को गोरे कैदी वहां जाते है। वहा भिन्न भिन्न पादरी उन्हें धर्म की शिक्षा देते हैं। काफिरों के लिए भी विशेष आज्ञा लेकर कितने ही पादरी आते है। काफिरों के लिए कोई खास मन्दिर नहीं। अतएव वे जेल के मैदान में बैठा करते है। यहूदियों के लिए उनके पादरी आते हैं। परन्तु हिन्दू और मुसलमानों के लिए ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं। हिन्दुस्तानी कैदी वहा होते भी अधिक नहीं। तथापि उन की धर्म-शिक्षा के लिए जेल में कुछ भी प्रबन्ध नहीं, यह उनके लिए हीनता की सूचना है। इस विषय में दोनों जातियों को विचार कर के दोनों को धर्म-शिक्षा की व्यवस्था जब तक एक भी हिन्दुस्तानी कैदी हो, तबतक, करानी चाहिए। ऐसे काम करने के लिए मौलवी तथा हिन्दू-धर्मगुरु स्वच्छ-हृदय होने चाहिए। अन्यथा शिक्षा का उलटा रूप होजाना सम्भव है।

अन्त।

जो कुछ जानने लायक बातें हैं उनका अधिकांश वर्णन

ऊपर हो चुका। कैदखाने में काफिरों के साथ हिन्दुस्तानियों की गिनती होती है, यह विषय विचारणीय है। गोरे कैदियों को सोने के लिए खटिया मिलती है। दांत माजने को दतौन, नाक मुंह साफ करने को तौलिया। और कैदी को ये सब क्यों नहीं मिलते, इसकी खोज करनी चाहिये। इस विषय में हम क्यों कोशिश करें, ऐसा ख्याल न रखिए। बूँद बूँद पानी से घडा भर जाता है। इस कहावत के अनुसार छोटी ही छोटी बातों से अपना मान घटता या बढता है। "जिसके मान नहीं, उसके धर्म नहीं"—अरबी भाषा की पुस्तक में लिखी हुई यह बात बिल्कुल ठीक है। जातियां अगर बढ़ेंगी तो धीरे २ अपना मान बढ़ा कर ही बढ सकती है। मान से अभिप्राय उच्छृंखलता से नहीं। किन्तु डर अथवा आलस्य के वश अपना अभीष्ट न खोना चाहिए—इस प्रकार की मन स्थिति और तद्नुरूप आचरण को सच्चा मान कहते हैं। ऐसा मान वही मनुष्य पा सकता है जिसका सच्चा विश्वास—आधार—परमेश्वर पर होगा। मेरा तो यही कहना है और वह चौकस भी है, कि किसी काम का सत्यज्ञान प्राप्त करना अथवा किसी का वास्तव में पूरा करना यह गुण उस मनुष्य का नहीं हो सकता जिसमें सच्ची श्रद्धा नहीं—जो प्रकृत श्रद्धावान नहीं।

—०—

मेरे जेल के अनुभव।

(दूसरी बार)

प्रस्तावना।

जनवरी में मैं एक बार जेल जा चुका हूँ। उस वक्त जो कुछ यहां अनुभव हुआ उसकी अपेक्षा इस बार का अनुभव मुझे अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ता है। मैंने उससे कितनी ही शिक्षायें ग्रहण की हैं। और मेरा खयाल है कि मेरा यह अनुभव अन्य भारतवासियों के लिए भी उपयोगी होगा।

सत्याग्रह की लड़ाई—निष्क्रिय प्रतिरोध—कितने ही प्रकार से किया जा सकता है। परन्तु राज्य—शासन—सम्बन्धी दुःखों को दूर करने का उपाय जेल ही देख पड़ता है। मेरा खयाल है कि हम लोगों को बार बार जेल जाना पड़ेगा। यह केवल इसी आन्दोलन के लिए नहीं, बल्कि आगे जो और और विपदायें उत्पन्न हों, उनके निमित्त भी यही अच्छा इलाज है। अतएव जेल के विषय की सभी ज्ञातव्य बातों को जान लेना हिन्दुस्तानियों का कर्त्तव्य है।

गिरफ्तारी।

जब मिस्टर सोराबजी जेल में चले गये तब मेरी भी इच्छा हुई कि उनके पीछे मैं भी पहुँच जाऊँ तो अच्छा हो, अथवा उनके छूटने के पहिले ही यह आन्दोलन पूर्ण हो जाय।

उस समय मेरी आशा व्यर्थ हुई। परन्तु जब नेटाल के वीर नेता जेल में भेजे गये तब फिर वही इच्छा प्रबल हो उठी और बाद में वह पूरी भी हुई। डरबन से लौटते हुए सातवीं अक्टूबर को मैं वोकसरस्ट स्टेशन पर पकडा गया, क्योंकि मेरे पास कानून आवश्यक सर्टिफिकेट न था और मैंने अगूठे की निशानी देने से इनकार किया था।

मैं डरबन इस उद्देश से गया था कि नेटाल में शिक्षा समाप्त करने वाले तथा ट्रान्सवाल के प्राचीन निवासी हिन्दुस्तानियों को ले आऊं। आशा यह थी कि नेटाल के नेताओं की अनुपस्थिति के कारण कितने ही हिन्दुस्तानी यहां से आने को तैयार हो जायगे। सरकार का भी यही खयाल था। अतएव वोकसरस्ट के जेलर को हुक्म मिला था कि सौ से भी अधिक हिन्दुस्तानियों के लिए प्रबन्ध कर रखना। उसके अनुसार प्रिटोरिया से डेरे, कम्बल, बरतन इत्यादि भेजे भी गये थे। जब मैं कितने ही हिन्दुस्तानियों के साथ वोकसरस्ट उतरा तब हमारे साथ पुलिस भी बहुत थी। परन्तु उसकी सारी दौड-धूप व्यर्थ हुई। जेलर और पुलिस को निराश होना पडा। क्योंकि डरबन से मेरे साथ बहुत ही कम हिन्दुस्तानी आये थे। उस गाडी में तो सिर्फ ६ आदमी थे और उसी दिन दूसरी गाडी से ८ आदमी और आये। अर्थात सब मिलाकर १४ हिन्दुस्तानी आये। सबके सब गिरफ्तार किये गये और जेलखाने में पहुँचाये गये। दूसरे दिन हम सब मेजिस्ट्रेट के सामने लाये गये, परन्तु सात दिनों के लिए मुकद्मा मुलतवी कर दिया गया। 'बेल' पर बैठ कर जाने से हमने इनकार किया। दो दिन बाद मि० भागजी करसन जी कोठारी आये। वे ववासीर से तग थे। बीमारी

फर्श हमेशा धोई जाती है जिससे कि यह बड़ी सफा रहती है। दीवारों पर कितनी ही बार चूना पोता जाता है। अतएव च हमेशा नई की तरह मालूम होती है। आँगन काले पत्थरों से बनाया गया है। वह सदा धोया जाता है। आँगन में ही स्नानगृह है। तीन आदमी एक साथ बैठकर नहा सकें, इतनी जगह उस में है। दो पाखाने हैं। बैठने के लिए दो बेंचें हैं। ऊपर कटीले तारों की जाली लगी हुई है। यह इस लिए कि कैदी ऊपर चढ न सकें। प्रत्येक कोठरी में प्रकाश और हवा अच्छी आ जा सकती है। छ बजे शाम को कैदी रोके जाते हैं और छ ही बजे सवेरे दरवाजा खुलता है। दरवाजों पर ताला जड़ दिया जाता है। इस कारण यदि किसी को कोई कुदरती हाजत अर्थात् पाखाना इत्यादि लगे तो वह बाहर नहीं जा सकता। अतएव कोठरी में ही, उस क्रिया के निमित्त जन्तुनाशक पानी से भरे हुए पात्र रखे रहते हैं।

भोजन।

जब मैं वोकसरस्ट की जेल में गया तब हिंदुस्तानी कैदियों को सवेरे 'पू पू' और दोपहर तथा शाम को चावल और तरकारियाँ मिलती थीं। तरकारी में प्रधानता आलुओं की थी। घी बिलकुल नहीं दिया जाता था। जो कच्ची जेल में थे उन्हें पूर्वोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त सवेरे 'पू पू' के साथ एक औंस चीनी और दोपहर को आधी रतल रोटी मिलती थी। कच्ची जेल वाले कितने ही आदमी अपनी चीनी और रोटी में से कुछ हिस्सा पक्की जेल वालों को भी दे दिया करते थे। कैदियों को दो दिन मांस खाने का हक था, परन्तु हिन्दुओं तथा मुसलमानों, किसी के भी काम का वह न होता था। अतएव उसके एवज हमें और कोई चीज मिलनी चाहिए थी। इसके

लिए हमने अर्जी भी दी। तब हमें मास के दिन एक औंस घी और आधा रतल बाल (बीन्स) मिलने लगा। इसके सिवा जेल के बगीचे में एक तरकारी आपही आप उगती थी और उसे काम में लाने की इजाजत भी मिली थी। कभी २ बगीचे में से प्याज भी लाने की सुविधा कर दी गई थी। अतएव घी और बाल (बीन्स) के मिलने के बाद भोजन की हमें कोई कहने लायक शिकायत न रह गई थी। जोहान्सबर्ग की जेल में भोजन भिन्न प्रकार का दिया जाता है। तरकारी नहीं दी जाती, शाम को दो दिन सब्जी और 'पू पू' मिलता है, तीन दिन बाल (बीन्स) और एक दिन आलू और 'पू पू' मिलता है।

यह भोजन यद्यपि अपनी प्रथा के अनुसार नहीं है तथापि साधारण तौर पर बुरा नहीं कहा जा सकता। कितने ही हिन्दुस्तानियों को 'पू पू' पर रुचि नहीं, और वे जान-बूझ कर नहीं खाते। परन्तु मैं तो इसे बड़ी भारी भूल समझता हूं। 'पू पू' मीठा और पौष्टिक (शक्ति-वर्द्धक) पदार्थ है। गेहूं की बजाय इस देश में वह काम में लाया जा सकता है। अगर इसमें शक्कर मिल जाय तो फिर बड़ा ही स्वादिष्ट हो जाता है। परन्तु शक्कर न होने पर भी यदि भूख लगी हो तो खूब मीठा लगता है। इसके खाने की आदत पड़ जाने के बाद पूर्वोक्त भोजन से आदमी भूखा नहीं रह सकता। यही नहीं, उस से शरीर हृष्ट-पुष्ट भी हो जाता है। उसमें कुछ रद्दोबदल हो जाय तो वह बिलकुल पूरा भोजन हो जाय। परन्तु खेद की बात तो यह है कि हम लोग इतने चटोरे हो गये हैं और हमारी आदतें ऐसी पड़ रही हैं कि हमें अपने अभ्यास के अनुसार यदि खाना न मिले तो हमारा मिजाज बिगड़ जाता

है। यह अनुभव मुझे वोकस्रस्ट में हुआ और उससे मैं बड़ दुखी रहता। भोजन का झगड़ा हमेशा दरपेश रहता और भोजन ही जीवन नहीं है अथवा खाने ही के लिए हम नहं जीते हैं यह शोर हुआ करता। सत्याग्रहियों के लिए ऐस करना उचित नहीं। भोजन में परिवर्तन कराना, यह अपन काम है। परन्तु परिवर्तन न हो तो जो मिले उसी पर सन्तुष्ट रह कर सरकार को दिखा देना चाहिए कि हम उस से हार खाने वाले नहीं हैं। और इसे हम अपना कर्तव्य मानें। कितने ही हिन्दुस्तानी खुराक की ही असुविधा के कारण जेल से डरते हैं। उन्हें चाहिए कि वे विचार करके भोजन-विषयक अपनी लालसा रोकें।

पक्की जेल मिली।

मेरे ऊपर कहे अनुसार हम सबका मुकदमा सात दिनों तक मुलतवी रहा। अर्थात् १४ वीं अक्टोबर को मुक दमा चला। उस समय अन्य हिन्दुस्तानियों को एक मास और कितनों ही को आठ हफ्ते की सख्त कैद की सजा मिली। एक लड़का ११ वर्ष का था। उसको भी १४ दिन की सादी कैद की सजा दी गई। मुझे डर था कि शायद मुझ पर से मुकदमा उठा लिया जाय। इस कारण मुझे रंज हो रहा था। और लोगों के मुकदमे फैसल हो जाने के बाद मेजिस्ट्रेट ने थोड़ी देर के लिए मुकदमे मुलतवी रक्खे। इससे मैं और भी घबड़ाया। मेरी चिन्ता और भी बढ़ी। पहले तो चर्चा यह चल रही थी कि मुझ पर रजिस्टर न दिखलाने और अंगूठा की निशानी न करने की तुहमत (इलजाम) लगाया जायगा। यही नहीं, बल्कि अन्य हिन्दुस्तानियों को ट्रान्सवाल में ले आने का दोष भी मढ़ा जायगा। मैं अपने मन में उधेड़बुन कर

ही रहा था कि इतने में मेजिस्ट्रेट फिर अदालत में आये और मेरा मुकद्दमा आरम्भ हुआ। मुझे २५ पौंड जुरमाने की सजा और जुरमाना न दाखिल करने की हालत में २ मास की सख्त कैद की सजा दी गई। इससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने को भाग्यवान समझने लगा कि मुझे अन्य भाइयों के साथ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पोशाक।

सजा होने के बाद हमें जेल की पोशाक पहनाई गई। एक छोटा सा मजबूत उटङ्गा पाजामा (जांघिया), खड्ड की एक कमीज, इसके ऊपर एक और वस्त्र, एक टोपी, एक तौलिया, मोजे और सेण्डल (Sandal—पहाड़ी ढंग का जूता) इतने कपड़े मिले। मैं समझता हूं कि ये कपड़े काम करने के वक्त बड़े सुभीते के हैं। सादे और टिकाऊ होते हैं। ऐसे कपड़ों के विषय में हमें कहने लायक कोई शिकायत नहीं। यदि रोजमर्रा ऐसे कपड़े पहनने को मिलें तो भी हर्ज नहीं। गोरों के कपड़े और तरह के होते हैं। उन्हें बेठवदार टोपी मिलती है। उन्हें घुटने तक के मोजे और दो तौलियों के सिवा रूमाल भी दिये जाते हैं। हिन्दुस्तानियों को भी रूमाल देने की जरूरत मालूम होती है।

काम।

जिन कैदियों को सख्त कैद की सजा मिलती है उनसे ९ घण्टे रोज काम कराने का हक सरकार को है। कैदी सदा ६ बजे कोठरियों में बन्द किये जाते हैं। सबेरे ५॥ बजे उठने का घण्टा बजता है। ६ बजे कोठरी का दरवाजा खुलता है। कोठरियों में बन्द करने तथा उन में से बाहर निकालते

समय कैदियों की गिनती की जाती है। प्रत्येक कैदी को हुक्म दिया जाता है कि अपने अपने बिछौने के पास साव धानी से खड़े रहो, ताकि गिनती जल्दी और ठीक हो जाय। हर एक कैदी को ६ बजने के पहले अपना बिछौना समेट कर और हाथ मुंह धोकर तैयार रहना चाहिए। सात बजे उन्हें अपने काम पर हाज़िर हो जाना पड़ता है। काम तरह तरह का होता है। पहले दिन तो हमें आम रस्ते पर एक खुली जमीन के खोदने का काम मिला। वह जमीन बाग-लगाव (Plantation) के लिए तैयार की जाती थी। हम लगभग ३० हिन्दुस्तानी उस काम पर लगाये गये। जो काम करने में असमर्थ थे उन्हें जाने की जरूरत न थी। हमें काफिरों के साथ लिवा ले गये। जमीन बड़ी कड़ी थी। उसे कुदाली से खोदना था। काम कड़ा था। धूप तेज पड़ रही थी। छोटी जेल से यह स्थान कोई डेढ़ मील होगा। सारे हिन्दुस्तानी झपाटे से काम करने लगे। परन्तु अभ्यास कम था। इससे सब बहुत थक गये। ना० तालेवन्त सिंह के पुत्र रविकृष्ण भी उन लोगों में थे। उन्हें काम करते देख मेरा कलेजा खखता था। उनकी मिहनत देख कर में खुश भी होता। ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया काम का बोझ अधिक मालूम होता गया। वार्डर (दारोगा) बड़ा तेज-मिज़ाज अर्थात् सख्त था। बराबर 'चलाओ, चलाओ' चिल्लाता रहता। इससे हिन्दुस्तानी बड़े घबड़ाते। कितनों ही को मैंने रोते भी देखा। एक आदमी का पैर फूला देखकर मेरा कलेजा फट रहा था। तथापि मैं सब से कहता था कि सब कोई ऐसा दिल लगा कर काम करो कि दारोगा को टोकने की जरूरत ही न पड़े। मैं स्वयं भी थक गया। हाथों में बड़े२ छाले पड़ गये। उन से पानी बहने लगा। झुका

मुश्किल से जाता था और कुदाली भी भारी लगने लगी। मैं ईश्वर से विन्ती किया करता कि मेरी लाज रक्खो। मुझे इतना बल दो कि मैं अपङ्ग न होऊं और बराबर काम करता रहूं। मैं तो उसी पर भरोसा रख के सब काम किया करता। दारोगा मुझे टोकने लगा। हमारे थक जाने पर वह टोकता। मैंने उस से कहा कि टोकने की जरूरत नहीं। मैं दिल तोड़कर काम करने-वाला हूं। दम भर करूंगा। इसी-समय मैंने मिस्टर जीनाभाई देसाई को मूर्छित होते हुए देखा। मैं अपनी जगह से तो हट नहीं सकता था, अतएव जरा थमा। दारोगा वहां गया। मैंने सोचा कि मुझे जाना ही चाहिए। मैं दौड़ा गया। और भी दो हिन्दुस्तानी आये। जीनाभाई पर पानी छिड़का गया। उन्हें होश आया। दारोगा ने औरों को काम पर भेज दिया। मुझे उनके पास बैठने दिया। जीनाभाई के ऊपर खूब पानी छोड़ने के बाद उन्हें आराम मालूम हुआ। मैंने दारोगा से कहा कि ये पैदल घर नहीं जा सकते। तब गाड़ी मँगाई गई। मुझे उन्हें ले जाने का हुक्म मिला। जीनाभाई के सिर पर पानी गिराते समय मैं सोचने लगा कि, 'मेरे शब्दों पर भरोसा—आधार रखकर—कितने ही हिन्दुस्तानी जेल भोग रहे हैं। यदि मेरी सलाह अनुचित हो तो मैं कितना पापी हूँ? मेरी बदौलत उन्हें इतना दुःख भोगना पड़ता है?' यह कह कर मैंने एक लम्बी साँस ली। ईश्वर को साक्षी समझ कर मैंने फिर सोचा और विचार में गोता लगाकर मैं फिर हँसता हुआ निकला। मुझे जान पड़ा कि मैंने जो सलाह दी है वह उचित है। दुःख भोगने में ही सुख है तो फिर दुःख के लिए रंज करने की आवश्यकता नहीं। अभी तो मूर्छा ही आई है पर यदि मौत भी आ जाय तो मैं दूसरी सलाह नहीं

दे सकता। जन्म-बन्धन की अपेक्षा इस दुःख को भोगकर बेडियों से मुक्त होना ही अपना कर्तव्य है-यह सोचकर मैं निश्चिन्त हो रहा और जीनाभाई को हिम्मत और दिलासा देता रहा।

गाडी आते ही जीनाभाई उसमें सुलाये गये। गाडी रवाना हुई। बडे दारोगा के पास शिकायत गई। जाच होने पर छोटे दारोगा को चेतावनी मिली। दोपहर को जीना भाई काम पर नहीं लाये गये उसी तरह और भी चार हिन्दुस्तानी कमजोर मालूम हुए। बाकी सब काम पर आ डटे। दोपहर को बारह से एक बजे तक भोजन का समय है और एक से पाच बजे तक काम करना पडता है। दोपहर को हमारी देख-रेख गोरे दारोगा के बजाय काफिर दारोगा को मिली। वह गोरे दारोगा से अच्छा था। यह बहुत टोक-टाक न करता था। कभी कभी कुछ कह देता था। इस समय अर्थात् दोपहर को काफिरों और हिन्दुस्तानियों को उसी जगह, परन्तु भिन्न भिन्न भागों में रक्खा गया। हम लोगों को जरा पोची (मुलायम) जमीन खोदने को दी गई।

जिस आदमी ने यह कन्ट्राक्ट अर्थात् ठीका लिया था उससे मेरी बातें हुई। उसने कहा कि हिन्दुस्तानी कैदियों की मजदूरी से मुझे हानि होना सम्भव है। उसने स्वीकार किया है कि हिन्दुस्तानी एकाएक उतना शारीरिक श्रम नहीं कर सकते जितना कि काफिर कर सकते हैं।

मैंने उससे कहा कि हिन्दुस्तानी किसी दारोगा के डर से काम करने वाले नहीं। वे तो अकेले परमेश्वर का डर रख कर जितना बनेगा, काम करेंगे। परन्तु पीछे मुझे

यह विचार बिलकुल बदलना पड़ा। क्यों मुझे ऐसा करना पड़ा, इसका वर्णन सुनिए —

दूसरे दिन हम फिर काम के लिए बाहर निकाले गये। परन्तु गोरे दारोगा के साथ नहीं; एक काफिर दारोगा के साथ। यह उस दिन वाला काफिर न था। यह भी भला आदमी था। हमें जरा भी न टोकता था।

हम भी भले ही आदमी थे। क्योंकि हम भी नेक-नीयती से जितना बनता था काम करते थे जो काम में हमें सौंपा गया था वह भी था मामूली ही। म्युनिसिपल्टी की जमीन में आम रास्ते के पास गड्ढे खोदने और पूरने थे। इन में थकावट आ सकती थी। मुझे अनुभव हो गया कि केवल परमात्मा साक्षी होता है। हम कामचोर थे। क्योंकि लोगों के काम में ढील देखी जाती थी। इस तरह काम की चोरी हमारे लिए बड़े ऐब की बात है-यह मेरा निजका मत है। हमारे आन्दोलन में जो ढील (सुस्ती) हुई है उसका भी कारण यही है। सत्याग्रह की राह जैसी सहल है वैसी ही अगतित—अव्यवस्थित—भी है। हमारी नियत साफ होनी चाहिए। हमारा सरकार से वैर तो है नहीं। हम उसे अपना शत्रु भी नहीं समझते। सरकार का सामना किया जाय तो उसकी भूल सुधारने के लिए और ऐब दूर करने के लिए। हम उसके अनिष्ट से प्रसन्न नहीं। उसका सामना करते हुए भी उसका भला चाहें। इस विचार से तो हमें जेल में शक्ति के अनुसार काम करना चाहिए। शायद हम यह कहें कि हमें काम करने की नीति से कोई वास्ता नहीं। अतएव जब दारोगा हो, तभी हमें पूरा काम करना चाहिए। ऐसा न होना चाहिए। काम करना यदि उचित और न्याय न हो तो हमें

दारोगा की परवा न करनी चाहिए। हमें उसका सामना करना चाहिए और उसके परिणाम स्वरूप यदि और सजा मिले तो उसे भोगनी चाहिए। पर कोई हिन्दुस्तानी यह नहीं मानता। जो काम नहीं करते वे सिर्फ आलस्य और कामचोर होने के कारण ही नहीं करते। ऐसा आलस्य और ऐसी चोरी हमें शोभा नहीं देती। सत्याग्रही के नाते हमें जो काम दिया जाय, करना चाहिए। और यदि दारोगा का डर न रखते हुए काम करें तो हमें कष्ट उठाना ही न पड़े। अतः काम की चोरी के कारण ही लोगों को जेल में कितने ही कष्ट उठाने पड़े थे।

इतनी बात के बाद अब हम फिर अपने प्रकृत विषयों पर आते हैं। इस तरह दिन बदिन काम आसान होता गया जिस दल में मैं गया था उसे उसके बाद जेल का बागीचा साफ रखने का तथा पौधे लगाने इत्यादि का काम मिला। मकई लगाने और आलुओं की क्यारियां साफ करने तथा उन के पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का काम उनमें प्रधान था।

दो दिन के बाद हम म्युनिसिपल्टी का तालाब खोदने भेजे गये। वहां खोदना, मट्टी की ढेरी लगाना तथा उसे ढोना पड़ता था। यह काम कठिन था। पर दो दिनों तक ही इसका अनुभव मिला। मेरे पहुंचे पर वरम आ गया पर मिट्टी के उपचार (इलाज) से वह अच्छा हो गया।

यह स्थान ४-५ मील दूर था। हम ट्राली (ठेले) में बैठ कर जाते थे। तालाब में ही खाने को बनाना पड़ता था। अतएव आटा, सामान और इंधन भी साथ ही ले जाना पड़ता था। इस से भी ठेकेदारों को सन्तोष न हुआ। हम काफिरों की बराबरी न कर सके। दो दिन तक तालाब में

हल से काम लिया गया। फिर दूसरा काम हमें सोंपा गया। आज तक वे ही हिन्दुस्तानी रो जाये जाते थे जो भिन्न भिन्न काम कर सकते थे। अब ऐसा करने के लिए उनके विभाग किये गये। कितने ही सोल्जरों की कबरों के आस-पास उगी हुई घास छीलने के लिए भेज दिये गये। बाकी लोग कबरस्तान साफ करने में लगा दिये गये। यही क्रम जारी रहा। इसी बीच यरटन के मुकदमे के बाद कोई ५० हिन्दुस्तानी छूट गये। तब हमेशा बागीचे में काम कराया जाता। यहां खोदना, फसल काटना, कूडा बटोरना इत्यादि काम था। यह काम भारी नहीं समझा जाता। इस से तन्दुरस्ती बढ़ती है। लगातार नो घण्टे यही काम करते रहने से पहले पहल जी ऊब उठता है परन्तु अभ्यास हो जाने पर फिर ऐसा नहीं होता।

इस काम के उपरान्त हर एक कोठरी में जो 'पेशाब' का पात्र रक्खा रहता है उसे उठा कर ले जाने का काम कराया जाता है। मैंने देखा है कि यह काम करते हुए लोग घिनाते हैं। पर वास्तव में इस में घिनाने की कोई बात नहीं। काम करने में हलकापन या ऐब मानना भूल है। फिर जेल के कैदियों के लिए तो नफरत के खयाल की गुञ्जाइश ही नहीं। मैंने देखा कि कितनी ही बार कोठरी में यह सवाल दरपेश रहता कि पेशाब का पात्र कौन उठावेगा। यदि हम सत्याग्रह के आन्दोलन का रहस्य समझते तो ऐसे सवालों की अपेक्षा हम में प्रतिस्पर्धिता विशेष देख पड़ती। जिस के हिस्से में ऐसा काम आ पड़े उसे अपने को धन्य समझना चाहिए। अर्थात् सरकार हमें ऐसा काम दे दे तो उस में हमारी कोई इज्जत नहीं, बल्कि हम में से जो आप ही पहले उसे करने को तैयार हो जाय वही श्रेष्ठ समझने लायक है। जब हम

कष्ट सहने को तैयार हैं तो फिर एक को दूसरे से अधिक कष्ट भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए और जिस पर अधिक काम आ पड़े उसे अपना गौरव समझना चाहिए। ऐसा आदर्श मि० हसन मिरजा ने पेश किया था। मिस्टर हसन मिरजा को फेफड़े का बहुत बुरा रोग है। वे हैं भी नाजुक मिजाज आदमी। तथापि जब जब जो काम उन्हें मिला, उन्होंने खुशी से उसे किया। इतना ही नहीं बल्कि अपनी बीमारी की परवा भी न की। एक बार एक काफिर दारोगा ने उन्हें बड़े दारोगा का पाखाना साफ करने पर रख दिया। उन्होंने तुरन्त ही उस काम को मंजूर कर लिया। यह काम उन्होंने कभी न किया था। इससे उन्हें कै हो गई। उन्होंने उसकी भी परवा न की। जिस समय वे दूसरा पाखाना साफ कर रहे थे मैं वहां जा पहुँचा, देखते ही मैं आश्चर्य से स्तब्ध हो गया। मेरे मन में उनके विषय में, प्रेम उमड़ उठा। पूछताछ करने पर पहले पाखाने की घटना की खबर मिली। एक बार उसी काफिर दारोगा को बड़े दारोगा ने हुक्म दिया था कि हिन्दुस्तानियों के जो पाखाने खास तौर पर बने हैं उनकी सफाई के लिए दो हिन्दुस्तानियों को लाओ। दारोगा मेरे पास आया और उसने दो आदमी मुझ से मांगे। मैं तो स्वयं उस काम को अच्छा समझता था। मुझे तो ऐसे काम से नफरत है नहीं। अतएव मैं खुद ही चला गया। मेरा खयाल है कि हमें ऐसे काम करने का अभ्यास होना चाहिए। ऐसे कामों को हम बुरी नजर से देखते हैं। यही कारण है जो कितनी ही बार हम अपने आंगनों तथा पाखानों को खराब हालत में पाते हैं। यही नहीं, इसी के बदौलत हम मिरगी इत्यादि रोगों को पैदा करते हैं अथवा

फैलाते हैं। हम लोग यही मान बैठे हैं कि पाखाना खराब ही है और इस कारण हम कितनी ही बार गन्दगी के दोष से दूषित माने जाते हैं। इसी किस्म का काम न करने के कारण एक हिन्दुस्तानी को सालिटरी सेल की अर्थात् काल-कोठरी में बन्द रहने की सजा मिली थी। सजा दी गई तो कोई परवा नहीं, पर उस सजा के भोगने की जरूरत न थी और ऐसा काम करने में हम आनाकानी करें, यह ठीक नहीं। अब जब मैं उस काम के लिए चला, दारोगा औरों को टोकने लगा कि तुम भी चलो। तब तो पूर्वोक्त हुक्म की बात फैल गई और यद्यपि काम बड़ा कम था तथापि तुरन्त ही मिस्टर उमर उसमान तथा मिस्टर रुस्तम जी मदद के लिए दौड़े। इस घटना के उल्लेख का अभिप्राय यह है कि सरकार जिस काम को करावे उसे करने में उन्होंने भी अपना मान समझा। यदि हम दिये गये काम से नाराज रहें तो हम सच्ची लड़ाई के काम के नहीं।

जोहान्सबर्ग को तबादला।

यह तो हुई वोकसरस्ट के जेल की कथा। अब आगे का हाल सुनिये -मुझे दो महीने की सजा मिली थी। वह सब की सब मुझे वोकसरस्ट में न भोगनी पड़ी। कुछ दिनों के लिये मैं अचानक जोहन्सबर्ग भी भेज दिया गया था। वहां जो कुछ हुआ वह भी जानने लायक है। २५ अक्टूबर को मुझे वहां ले गये, क्योंकि दरजी डाह्या के मुकदमे में मेरा बयान होने वाला था। इसके सिवा और भी कारण होंगे, इत्यादि तर्क-वितर्क मेरे मन में होते थे। हम सब आशापूर्ण थे। अतएव हमने कहा कि शायद मिस्टर स्मट्स की भेंट की बात

होगी। परन्तु पीछे ज्ञात हुआ कि, यह कुछ नहीं था। मुझे लें जाने के लिए जोहान्सवर्ग से एक दारोगा खास तौर पर भेजा गया था। दारोगा के तथा मेरे लिए रेलवे का एक डब्बा दिया गया था। सेकेण्ड-क्लास का टिकट था। इसका कारण यह था कि उस में तीसरे दरजे की गाडियां थीहीं नहीं। जान पडता है कि कैदियों को तीसरे ही दरजे में ले जाते हैं। रास्ते में भी मैं कैदी की पोशाक में था। मेरा सामान मुझी से उठवाया जाता था। जेल से स्टेशन तक पैदल जाना पडा। जोहान्सवर्ग पहुंचने पर वहां से भी जेल तक सामान लाद कर जाना पडा। इस बात पर अखबारों में बडी बडी आलोचनायें हुई। विलायत की पार्लियामेण्ट में प्रश्न किये गये। बहुतों के दिल दुखे। सब लोगों का यही खयाल हो गया कि मेरे सदृश राजनैतिक कैदी को साधारण कैदी की पोशाक में ले जाना और बोझा उठवाना न चाहिए था।

लोगों का दिल दुखता था यह इससे जाना जाता है कि जब मिस्टर आगलिया ने सुना कि मुझे इस तरह जाना पडेगा तब उनकी आंखों में आंसू छलछला आये। मिस्टर नायडू तथा मि० पोलक को खबर हो गई थी, वे स्टेशन पर मिले। उन्हें भी मेरी दशा देखकर रुलाई आने लगी। ऐसा रोने का कोई कारण न था। इस देश में राजनैतिक और अन्य कैदियों में सरकार भेद रखे, यह सम्भव नहीं। हमें जितना अधिक कष्ट दिया जाय और हम उसे भोगें, उतनी ही जल्दी छुटकारा मिलेगा। फिर जेली पोशाक पहनना और सामान लादना यह विचारने पर मेरी समझ से तो दुःखस्वरूप नहीं जान पडता। परन्तु दुनिया तो ऐसी वस्तु को ऐसा ही मानती है। इस कारण विलायत में खलबली मच गई।

रास्ते में दारोगा की ओर से जरा भी कष्ट न मिला। मेरा यह निश्चय था कि दारोगा स्वयं यदि ज़ाहिरा इजाजत न दे तो जेल के सिवा दूसरा भोजन ग्रहण न करूंगा। इससे आज तक मैंने जेल के ही भोजन पर निर्वाह किया था। रास्ते के लिए खाना साथ बंधा भी न था। दारोगा ने मुझे अपनी इच्छा के अनुसार भोजन पाने की इजाजत दी। स्टेशन-मास्टर ने मुझे पैसे देने चाहे। उसकी सहानुभूति बड़ी उत्तेजित हो उठी थी मैंने उसका उपकार माना और पैसे लेने से इनकार किया। मिस्टर काजी स्टेशन पर मौजूद थे। उनके पास से १० शिलिंग लिये। उन से अपने तथा दारोगा के लिए मैंने खाने को लिया।

शाम होते २ जोहान्सबर्ग पहुंचे। दारोगा मुझे हिन्दुस्तानियों से न मिलाकर काला वाला ले गया। कैदखाने में जहां रोगी काफिर कैदी थे उस कोठरी में मेरा बिछौना डाला गया। इस कोठरी में रात बड़ी बेचैनी और घबराहट से कटी। मुझे खबर नहीं थी कि मुझे दूसरे हिन्दुस्तानियों के पास ले जायगे। मैं यही समझा था कि मुझे यहीं रक्खेंगे। इससे मैं बहुत व्याकुल हुआ। तथापि मैंने जी जान से निश्चय किया कि मेरा तो कर्तव्य यही है कि जो कुछ कष्ट मुझे मिले सहन करूं। भगवद्गीता मेरे साथ थी। मैंने उसे पढ़ा। उस समय के अनुकूल श्लोकों को पढ़ कर के उनका मनन किया और धैर्य्य धारण किया। मेरी घबराहट का कारण यह था कि मुझे काफिर तथा चीनी कैदी जङ्गली, खूनी और अनीतिमान् मालूम हुए। उनकी बोली मैं न समझता था। काफिरों ने मुझ से पूछताछ शुरू की। उनमें मैंने हँसी ठट्ठा का आभास देखा। मैं समझ न सका। कुछ उत्तर न दिया

उन्हों ने मुझ से टूटी फूटी अंग्रेज़ी में पूछा "यहा तू किस लिए लाया गया है ?" मने कुछ जवाब दे दिया और चुप हो रहा। चीनी ने फिर सवाल करना आरम्भ किया। वह और भी बुरा मालूम हुआ। मेरे बिछौने के सामने आकर वह मुझे घूरने लगा। मैं चुपरहा। फिर वह काफिरके बिछौने की ओर गया। वहां दोनों एक दूसरे से फोश (गन्दा) मजाक करने लगे। वे परस्पर के दोपदर्शन भी कराने लगे। ये दोनों कैदी खूनी या डकैत मालूम होते थे। यह देखकर मेरी नींद (आधाई) हवा होगई। यह सब कल गवर्नर को सुनाऊंगा, यह सोचकर मुझे बहुत रात बाद कुछ झपकी आ गई।

सञ्चा दुःख-कष्ट तो यह था। सामान उठाना तो इस के आगे कोई चीज नहीं। जो अनुभव मुझे हुआ है ऐसाही और हिन्दुस्तानियों को भी होता होगा। वे भी इसी तरह डरते होंगे, यह याद करके मैं खुश हुआ कि ऐसा कष्ट मैं भी भोग रहाहूं। मने कहा कि यह अनुभव करके अब मैं सरकार से औरभी जोर शोर से लड़ूंगा और जेल में आकर इस विषय का सुधार कराऊंगा। सत्याग्रह की लडाई का यह सब टेढा—सर्प की गति के सदृश-लाभ है। दूसरे दिन उठतेही मुझे जहां और हिन्दोस्तानी कैदी थे वहां ले गये। अतएव मुझे पूर्वोक्त विषय में गवर्नर से कहने सुनने का प्रसंग न मिला। तथापि मेरे मन में यह ख्याल बना हुआ है कि इस बात का आन्दोलन करूं कि इस तरह हिन्दुस्तानी कैदी काफिरों के साथ न रक्खे जाय। जब मैं गया, तब कोई १५ कैदी वहां थे। तीन को छोड़कर सब सत्याग्रही थे। तीन आदमी और अपराधों के अपराधी थे। वे काफिरों के साथ रक्खे जाते थे। जब मैं गया, बड़े दारोगा ने हुक्म दिया कि

हम सबके लिये जुदी कोठरी दी जाय। मैंने खेद के साथ देखा, कितनेही हिन्दोस्तानी काफिरों के साथ मजे में सोते हैं, क्योंकि उन्हें वहा चोरी से लुक छिप कर तम्बाकू मिल जाती थी। यह हमारे लिये शरम की बात है। हमें काफिरों अथवा और लोगों से घृणा नहीं, परन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि उनके और हमारे साधारण व्यवहार में एकता नहीं। फिरभी जो लोग उनके पास सोना चाहते है, वे और ही अभिप्राय से ऐसा करते हैं। अतएव यदि ऐसा भाव हमें उत्तेजित करे तो हमें उसको हृदय में स्थान न देना चाहिये।

जोहान्सबर्ग की जेल में एक और दुखद अनुभव मुझे हुआ। वहा के दो विभाग औरही ढग के है। एक विभाग में काफिर तथा हिन्दुस्तानी सख्त कैद की सजा के कैदी रहते है, दूसरे विभाग में सादी कैद वालो बन्द किये जाते हैं। सख्त कैद की सजा वाले कैदी को उस में जाने का अधिकार नहीं। हम दूसरे विभाग में सोते थे परन्तु दूसरे विभाग का पाखाना बगर काम में लाने का हमें अधिकार न था। पहले विभाग के पाखाने में तो इतने ज्यादा कैदी हो जाते है कि उन में पाखाने बैठने की उन्हें बडी दिक्कत रहती है। कितने ही हिन्दुस्तानियो को इससे बडा दुःख होता है। उनमें एक म भी हूँ। दारोगा ने मुझसे कहा था कि दूसरे विभाग के पाखानों में जाने में हर्ज नहीं। इस से म वहा गया। इस पाखाने में भी भीड होती है। पाखाने खुले हुये है। उनमें दरवाजे नही होते ज्योंही मैं बैठा, एक लम्बा चौडा हट्टा-कट्टा विकराल काफिर आया और मुझसे उठ जाने को कहा तथा लगा गालिया देने। मैने कहा, अभी उठता हूँ। इतने में उसने मुझे हाथ पकड कर उठाया और बाहर

फेंक दिया। सौभाग्य से मैंने चौगट पकड़ली, जिससे मैं गिरा नहीं। म घबराया नहीं। हँस कर चलता बना परन्तु निम्न एक दो हिन्दुस्तानियो ने यह माजरा देखा वे रो उठे। जेल में वे सहायता तो कर नहीं सकते थे, हा, अपने को निरुपाय समझ कर उन्हें रन्ज अवश्य हुआ। पीछे मुझे मालूम हुआ कि अन्य हिन्दुस्तानियो को भी इसी तरह के दु ख भोगने पड़ते है। इस विषय पर मैंने गवर्नर से बातचीत की और कहा कि हिन्दुस्तानी कैदियो के लिये जुदे पाखाने की जरूरत हे। मने उनसे यह भी कहा कि काफिर कैदियो के साथ हिन्दुस्तानी कैदी कदापि न रक्खे जाय। गवर्नर न तुरन्त हुक्म दिया कि बड़ी जेल के छ पाखाने हिन्दुस्तानी कैदियो के लिए अलग कर दिये जाय। तब जाकर कही दूसरे दिन से पाखाने की तकलीफ मिटी। मैं खुद चार दिनों तक पाखाने न गया था इस से तबीयत भी खराब हो गई थी।

जोहान्सबर्ग में रहते हुए मुझे तीन चार बार अदालत में जाना पड़ा था। यहा मिस्टर पोलक तथा मेरे पुत्र को मिलने की इजाजत मिली थी। और लोग भी कभी कभी मिल जाया करते थे। मुझे घर से भोजन मँगाने की भी इजाजत अदालत से मिल गई थी। इस से रोटी, पनीर (Cheese) इत्यादि चीजें मेरे लिये मिस्टर केलेनबेक लाते थे।

मेरे इस जेल में रहते हुये सत्याग्रही कैदी बहुत बढ़ गये थे। एक बार तो पचास से भी ज्यादा हो गये थे। बहुतों को तो एक पत्थर पर बैठकर छोटी हथोड़ी से बारीक कंकड़ी तोड़ने का काम सौंपा गया था। कोई दस आदमी फटे कपड़े सीने के काम में लगाये गये थे। मुझे मशीन

से टोपी सीने का काम दिया गया था। मैंने मशीन का काम पहिले पहल यहीं सीखा। काम मुश्किल न था। इस से सीखने में कुछ भी देर न लगी। अधिकांश हिन्दुस्तानी कक्कडी तोडने में लगाये गये थे। इस कारण मैंने भी वही काम चाहा। परन्तु दारोगा ने कहा है कि मुझसे बडे दारोगा ने कहा है कि तुम्हें बाहर न निकालूं। उसने मुझे पत्थर तोडने जाने की इजाजत न दी। एक दिन ऐसा हुआ कि मेरे पास मशीन का अथवा दूसरा सीने का काम न था अतः मैं पुस्तकें पढ़ने लगा। नियम यह है कि प्रत्येक कैदी को जेल का कुछ न कुछ काम करते रहना चाहिये। सो दारोगा ने मुझे बुलाया और पूछा—"क्या आज तुम बीमार हो?"

मैंने जवाब दिया—"जी नहीं"

प्र०—तो फिर काम क्यों नही करते हो?

उ०—मेरे पास जो काम था वह पूरा हो गया। मैं काम का ढोंग करना नहीं चाहता। काम दीजिये तो मैं करने को तैयार हूँ। बेकाम बैठने से पढने में क्या हर्ज है?

प्र०—यह तो सच है, लेकिन जब बडा दारोगा या गवर्नर आवे तब तुम स्टोर में रहो तो अच्छा है।

उ०—मैं ऐसा करने के लिये तैयार नहीं। मैं तो गवर्नर से भी कहने वाला हूँ कि मेरे लिये स्टोर में पूरा काम नहीं। इस से मुझे कक्कडी तोडने भेज दीजिये।

प्र०—यह तो बहुत अच्छा है। पर मैं तो विना इजाजत कक्कडी तोडने नहीं भेज सकता न!

इस घटना के थोडी देर बाद गवर्नर आये। मैंने उन्हें सब हाल कह सुनाया। उन्होंने कक्कडी तोडने जाने की इजा-

जत न दी और कहा कि तुम्हें वहा जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि दूसरे ही दिन तुम्हें वोकसरस्ट जाना होगा।

डाक्टरी जांच— और नंगे कैदी!

वोक्सरस्ट का कैदखाना छोटा था। इस कारण कितनी ही रियायतें जो यहा मिलती हैं, जोहान्सबर्ग की बडी जेल में नहीं मिलती। उदाहरण के लिए वोकसरस्ट की जेल में मिस्टर दाऊद मुहम्मद को सर पर बाधने के लिए साफा तथा औरों को तो पाजामें भी पहनने को दिये जाते थे। रुस्तमजी, मि० सोराबजी तथा मि० शापुर जी को अपनी निज की टोपी पहनने को दी जाती थी। पर जोहान्सबर्ग की जेल में यह भी मुश्किल था। जोहान्सबर्ग की जेल में जब कैदी पहले पहल दाखिल होता है, डाक्टर उनका मुलाहजा करते हैं। इस मतलब से कि किसी कैदी को अगर कोई छुआ-छूत का रोग हो तो उसकी दवा की जाय और दूसरे कैदी से अलग रक्खा जाय। इस लिए कैदियों की जाच लगातार की जाती है। कितने ही कैदियों को आतशक खुजली इत्यादि बीमारिया होती हैं। अतएव उनकी गुप्त इन्द्रिया जाची जाती हैं। कैदी बिलकुल नङ्गे देखे जाते हैं। काफिरों को तो १५ मिनट तक बिलकुल नङ्गा खड़ा रखते हैं, ताकि डाक्टर का समय बच जाय। हिन्दुस्तानी कैदियों के जाघिये तभी खोले जाते हैं जब डाक्टर आते हैं और लोगों के कपड़े पहले ही से उतरवा लिए जाते हैं। प्राय सभी हिन्दुस्तानी जांघिया खोलने की अनिच्छा प्रकट करते हैं। तथापि कितने ही तो सत्याग्रह की लडाई के लिहाज से आनाकानी नहीं करते, परन्तु मन में दुखी अवश्य होते हैं।

इस विषय पर मैंने डाक्टर से कहा, उन्होंने कितने ही कैदियों को अलग स्टोर में जाचा; परन्तु सदा के लिए ऐसा करने से इन्कार किया। एसोसियेशन ने इस बारे में लिखा पढ़ी की है और मामला अभी चल रहा है। इस विषय की शिकायत करना न्याय्य है। जो रिवाज बहुत पुराना है उसे एकाएक न बदलना चाहिए। तथापि यह विषय है विचार करने लायक। पुरुषों में ही अवयव-इन्द्रिया छिपाने की जरूरत नहीं। फिर यह कहना तो अकारण है कि दूसरा आदमी हमारे गुप्त अवयव छू कर देखेगा। झूठी शरम करने का कोई कारण नही। हम स्वयं यदि निर्दोष मन के हों तो प्रकृति की दी हुई चीज को खासतौर पर छिपाने की आवश्यकता नहीं। मै जानता हूं कि ये विचार भारतीय मात्र को विचित्र मालूम होंगे। तथापि मेरे कथन पर गहरा विचार करने की जरूरत है। इस किस्म की आपत्तिया करने से हमें लड़ाई में हानि होगी। पहले हिन्दुस्तानी कैदियों की जांच बिलकुल न होती थी। लेकिन एकबार दो तीन हिन्दुस्तानियों ने कह दिया कि हमें तो कोई बीमारी नहीं है पर असल में थे वे रोगग्रस्त। डाक्टर को सन्देह हुआ और उसने जब उन्हें जाचा तब वे झूठे निकले। तब से डाक्टर ने हिन्दुस्तानियों को भी जाचने का ठहराव कर दिया। इस से आप जान सकते हैं कि जब हम पर कोई आफत आ पड़ती है तो उसका कारण अधिकांश में हम स्वयं ही होते है।

जोहान्सबर्ग से वापसी।

ऊपर कहे अनुसार ४ नवम्बर को मैं फिर वोकसरस्ट टोपस आया। उस वक्त भी मेरे साथ एक दारोगा था। मेरी

पोशाक कर दी की थी। इस बार मुझे पैदल नहीं, गाड़ी में रेलवे स्टेशन पर लिवा ले गये। परन्तु दूसरे दरजे की जगह टिकट था तीसरे दरजे का। रास्ते के लिए मुझे आधा पौंड रोटी तथा बीफ (गो-मांस) खाने के लिए मिला। गो-मांस लेने से मैंने इन्कार कर दिया। तब दारोगा ने रास्ते में मुझे दूसरी खाने की चीजें लेने की इजाज़त दी। मैं स्टेशन पर गया, तो वहा कितने ही हिन्दुस्तानी दरजी मिले। उन्होंने मुझे देखा। बात चीत तो कर सकते थे नहीं, मेरी पोशाक देखकर कितनों ही को रुलाई आ गई। मुझे पोशाक इत्यादि के विषय में कुछ बुरा भला कहने का अधिकार नहीं था। अतएव मैं चुपचाप देखता रहा। मैं और दारोगा दोनों एक अलहदा डब्बे (गाड़ी) में बैठे। हमारे पास की गाड़ी में एक दरजी भी था। अपने भोजन में से उसने मुझे कुछ खाने को दिया। हेडलबर्ग में मिस्टर सोभाभाई पटेल मिले। स्टेशन से उन्होंने कुछ खाने को लाकर दिया। जिस देवी से उन्होंने कुछ खाने को लिया उसने सत्याग्रह की लड़ाई से अपनी सहानुभूति दिखाने के विचार से दाम न लेना चाहा, परन्तु जब मिस्टर सोभाभाई ने बहुत ही इसरार किया तब उसने नाममात्र के लिए कुछ पेनी ले ली। मि० सोभाभाई ने स्टाडरटन को तार दे दिया था इस से वहा भी कितने ही हिन्दुस्तानी स्टेशन पर आये थे और साथ ही खाने को भी लेते आये थे। रास्ते में मैंने और दारोगा ने खूब डट कर भोजन किया।

वोक्सरस्ट पहुचते ही स्टेशन पर मिस्टर नगदी तथा मि० काजी मिले। वे हम दोनों के साथ थोड़ी दूर तक चले। उन्हें दूर ही दूर चलने की इजाजत मिली थी। स्टेशन से फिर

मुझे सामान उठाकर चलना पड़ा था। इस बारे में भी अखबारों में खूब चर्चा चली थी। वोकसरस्ट में मुझे फिर आया देखकर सब हिन्दुस्तानी प्रसन्न हुए। उस रात को मैं मि० दाऊद मुहम्मद की कोठरी में बन्द किया गया था। बहुत रात गये तक हम दोनों एक दूसरे को अपनी अपनी बीती सुनाते रहे।

हिन्दुस्तानी कैदियों का दृश्य।

जब मैं वोकसरस्ट वापस गया तब हिन्दुस्तानी कैदियों का चेहरा बदल गया था। ३० के बजाय ७५ कैदी होगये थे। इस जेल में इतनी जगह न थी कि इतने कैदी रह सकते। अतएव डेरे लगाये गये थे। रसोई के लिए खास चूल्हा प्रिटोरिया (ट्रान्सवाल) से आया था। कारागृह के पास ही नदी बहती है। कैदी उस में स्नान कर सकते थे। उस समय वे कैदी न मालूम होते थे, बल्कि सिपाही जान पड़ते थे। वह कैदखाना न था, सत्याग्रहियों की छावनी थी। फिर दारोगा चाहे दुख दे चाहे सुख, इस से हमें क्या सरोकार। वास्तव में तो अधिकांश दारोगा, समष्टिरूप से, भले मानुस ही थे। हर एक दारोगा का कुछ न कुछ नाम मि० दाऊद मुहम्मद ने रख दिया था। किसी का नाम "ड-कली" तो किसी का नाम "मफ्टो"—इस तरह उन्होंने उन सब के जुदे जुदे नाम रक्खे थे।

मेली मुलाकातें।

वोकसरस्ट की जेल में मुलाकात करने के लिए बहुत हिन्दुस्तानी आते थे। मि० काजी तो हमेशा आया करते। कैदियों के मनबहलाव की तजवीज वे खूब करते। जहां तक

उन से बन पडता वे मिलने आने वालों को भी मौका प्राप्त करा दिया करते। मि० पोलक प्राय हर हफ्ते काम से मिलने आया करते थे। नेटाल से मि० मुहम्मद इब्राहीम तथा मि० खरसानी कांग्रेस की मेन लाईन के चन्दे के लिए खास तौर पर आये थे। ईद के दिन तो कोई १०० हिन्दुस्तानी नेटाल के सेठियो से मिले थे। उस दिन तारों की भी मानों वर्षा हुई थी।

दुखकर विचार-।

जेल में साधारण तोर पर बहुत स्वच्छता रक्खी जाती है। यदि ऐसा न हो तो बीमारियों के बढने में देर न लगे। तथापि कितनी ही बातों में गन्दगी भी देखी जाती है। ओढ़ने के कम्बल एक दूसरे से हमेशा बदल जाते हैं। चाहे जैसे मैले काफिर का ओढा हुआ कम्बल हिन्दुस्तानी के हिस्से में आ जाता है। उन में प्राय लीखें पड जाती हैं और बदबू निकला करती है। कानून के अनुसार तो जब २ धूप निकले तब २ हमेशा आधे घन्टे तक उन्हें सुखाना चाहिए। परन्तु ऐसा शायद ही कभी किया गया हो। सफाई-पसन्द आदमी के लिए यह गडबड साधारण बात नहीं। पहनने के कपडों की भी दशा बहुत बार ऐसी ही हो जाती है। कैदियों के छूटते वक्त उन के बदन के कपडे हमेशा धोये नहीं जाते। वे वैसे ही मैले नये कैदियों को पहना दिये जाते हैं। यह बात बडी घिनौनी है।

कैदी जेल में पचापच धांदे जाते थे। जोहान्सबर्ग में जहा २०० कैदियों की गुंजाइश थी, वहां ४०० ठसे गये। एक कोठरी में कानून की निर्दिष्ट संख्या से दूने कैदी बहुत बार बन्द किये जाते थे और कभी २ उन्हें काफी कम्बल तक

नहीं मिलते थे। यह तकलीफ ऐसी वैसी तकलीफ नहीं। परन्तु प्रकृति का नियम कुछ ऐसा है कि बे-कसूर मनुष्य जिस स्थिति में आ पड़ता है उसमें उसकी रक्षा वह एव करती है। हिन्दुस्तानी कैदियों का भी यही हाल था। पूर्वोक्त सभी विपद में भी हिन्दुस्तानी प्रसन्न रहते और मिस्टर दाऊद मुहम्मद तो दिन भर खुशदिल रहते। यही नहीं ये हँसी मजाक करके सारे हिन्दुस्तानी कैदियों को हँसाया करते थे।

जेल में दुःख की बात तो यह देख पड़ी कि एक बार कितने ही हिन्दुस्तानी बैठे हुये थे। एक काफिर दारोगा आया उसने थोड़ी सी घास छीलने के लिये दो हिन्दुस्तानी माँगे। थोड़ी देर तक कोई न बोला। तब मि० इमाम अब्दुल कादिर जाने के लिये तैयार हुये। तिस पर भी उनके साथ जाने को कोई न निकला। सब दारोगा से कहने लगे कि ये हमारे इमाम हैं। इन्हें मत ले जाओ। ऐसा कहने से दूनी खराबी हुई। अव्वल तो हर एक को घास छीलने को तैयार होने की जरूरत थी। सो तो एक ओर रहा। परन्तु जब अपनी जाति का नाम रखने के लिये इमाम साहब तैयार हुये तब उनकी पद-प्रतिष्ठा जाहिर कर दी। वे तो घास छीलने को तैयार हो गये, पर और कोई न हुआ-मानों यह दिखा कर उन्होंने अपनी बेशरमी प्रकट की।

धर्म--संकट

मैंने आधी ही सजा भोगी होगी कि फिनिक्स से तार आया कि श्रीमती गांधी बीमार हैं। वे, मृत्यु-शय्या पर पड़ी हैं, इस लिये मुझे जाना चाहिये। इस खबर से सबको रंज हुआ। मैं दुविधा में पड़ गया कि इस समय मेरा कर्तव्य

गया है। जेलर ने पूछा कि —"तुम जुर्माना दाखिल करके जाना चाहते हो या नहीं ?" मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि —"जुर्माना तो मैं किसी हालत में भी नहीं दे सकता। सगे-सम्बन्धियों से विछोह होना भी हमारी सत्याग्रह की लड़ाई का एक अङ्ग है।" यह सुन कर जेलर हँसा और रंजीदा भी हुआ। साधारण तौर पर मेरा यह विचार निष्ठुर जान पड़ता है। तथापि मुझे तो निश्चय है कि यह सच्चा है—श्रेयस्कर है। स्वदेश प्रेम को मैं अपने धर्म का एक अंग समझता हूं। इससे केवल यही नहीं कि स्वदेश-प्रेम में ही धर्म के सर्वांश का समावेश होता है, बल्कि यह कि स्वदेश-प्रेम के बिना धर्म की पूर्ति नहीं हो सकती। धर्म के पालन करने में यदि स्त्री, पुत्र का वियोग सहना पड़े तो उसे सहन करना चाहिये। परवा नहीं यदि वे सदा के लिए हम से बिछुड़ जाय। इस में ज़रा भी निष्ठुरता नहीं। यह तो स्वदेश-प्रेमियों का कर्तव्य ही है। जब कि हमें मृत्यु के दिन तक लड़ना ही है तो फिर इसके सिवा दूसरा ख्याल हमारे दिल में पैदा न होना चाहिये। लार्ड राबर्ट्स ने अपना कर्तव्य पालन करते हुए उन दिनों जब कि उनका काम प्राय पूरा हो चुका था अपने इकलौते लड़के की मृत्यु का समाचार सुना और उसे दफन करने में वे शरीक भी न हो सके, क्योंकि वे लड़ाई में लगे हुए थे। ऐसे उदाहरणों से संसार का इतिहास भरा पड़ा है।

काफिरों के झगड़े।

जेल में कितने ही बड़े बड़े खूनी काफिर कैदी थे। इन में हमेशा लड़ाई झगड़े हुआ करते थे कोठरियों में बन्द किये जाने पर भी वे लड़ाई किया करते थे। कभी २

नो दारोगा का भी सामना कर बैठते थे। कैदियों ने दो बार दारोगा को पीटा भी। ऐसे कैदियों के साथ हिन्दुस्तानी कैदियों को रखने से जो खतरा हो सकता है वह साफ ही जाहिर है। गनीमत है कि हिन्दुस्तानियों पर वैसी नौबत अभी तक नहीं आई। परन्तु जब तक सरकारी कानून कहता है कि काफिरों में हिन्दुस्तानी कैदियों की भी गिनती की जाय तब तक इस हालत को खतरनाक ही समझिये।

जेल में बीमारी

जेल में अधिकांश कैदी ऐसे थे जिन्हें कोई खास बीमारी न थी। मि० मावजी का हाल पहले ही लिख चुका हूं। मि० राजू नाम के एक तामिल (मदरासी) सज्जन थे। एक बार इन्हें सख्त आमातिसार हुआ था, बहुत बेचैनी रही। इसका कारण इन्होंने यह बताया कि उन्हें रोज ३० प्याले चाय पीने की आदत थी। जेल में चाय कहां, इसी से उन्हें इस रोग ने धर दबाया। उन्होंने चाय मिलने की कोशिश भी की, परन्तु मिली नहीं। उसके बदले दवा मिली, और जेल के डाक्टर ने २ पांड दूध तथा रोटी देने की इजाज़त दी। इससे ये आराम हो गये। मि० रविकृष्ण तालेवन्त सिंह की तबियत आखिर तक खराब रही। मि० काजी और मिस्टर घावजीर अन्त तक रोगी रहे मि० रतनसी सोढ़ा चातुर्मास व्रत रहते थे और एकाहारी थे। भोजन अच्छा न मिलने से वे भूखे रहते थे। परन्तु अन्त में वे भी अच्छे हो गये। इनके सिवा कितने ही लोगों को कुछ-न-कुछ बीमारी भोगनी पड़ी। तथापि मैंने देखा कि बीमारी में भी हिन्दुस्तानी पस्तहिम्मत न हुए। अपने देश के नाम पर, वे, इन कष्टों के लिए सदा तैयार रहे।

कुछ विघ्न-बाधायें।

यह देखने में आया कि बाहरी मुसीबतों की अपेक्षा भीतरी आपत्तियां अधिक दुःख देती थीं। वहां हिन्दू मुसलमान तथा उच्च और नीच जाति के भेद-भाव की झलक भी कभी कभी देख पड़ती थी। वहां सभी जातियों और सभी श्रेणियों के हिन्दुस्तानी रहते थे। उनके रंग-ढंग से यह जाना जा सकता था कि हम स्वराज्य-प्राप्ति की राह में कितने पिछड़े हुए हैं। तथापि यह भी देखा गया कि यह कोई ऐसी बात नहीं जिसके कारण हम स्वराज्य का सञ्चालन न कर सकें, क्योंकि जितनी विघ्न-बाधायें उपस्थित हुईं वे अन्त में दूर भी हो गईं।

कितने ही हिन्दू कहते थे कि हम मुसलमानों के हाथ का खाना न खायंगे, फलां आदमी के हाथ का न खायेंगे। ऐसा कहने वाले आदमियों को तो हिन्दुस्तान के बाहर कदम ही नहीं रखना चाहिये। गोरे या काफिर भी हमारे खाने से छू जायं तो हर्ज नहीं। एक बार एक आदमी ने ऐतराज किया कि मैं फलां चमार के पास न सोऊंगा। यह भी हमारे लिये शरम की बात है। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि यह मनुष्य भेद-भाव का तो कायल न था, परन्तु उस ने यह इसलिए चाहा था कि कहीं देश में उस के सजातियों को यह बात मालूम हो गई तो वे ऐतराज करेंगे। मैं जानता हूं इस तरह के ऊंच-नीच के खयाल और जाति वालों के जुल्म से डर कर हम सत्य को छोड़ कर असत्य का आदर करने लग गये हैं। यदि हम जानते हैं कि चमार का तिरस्कार करना ठीक नहीं तो फिर जाति वालों तथा दूसरों से फजूल डर कर और सत्य को छोड़कर हम सत्याग्रही कैसे कहे जा सकते हैं? मेरी यह इच्छा है कि इस लड़ाई में शरीक होने वाले

हिन्दुस्तानी जाति, परिवार और अधर्म का मुकाबला करके सत्याग्रही बनें। हम ऐसा नहीं करते, इसी से हमारा आन्दोलन शिथिल है। मेरा तो यही निश्चय है। जब कि हम सब हिन्दुस्तानी हैं तो झूठे भेद-भाव रख कर हम बढ़ बढ़ कर बातें बनावें और अधिकार मांगे, यह कैसे सम्भव है? अथवा "देश में हमारा क्या होगा" इस डर से हम सत्य का अवलम्बन न करें तो इस लड़ाई में हमें कैसे विजय प्राप्त होगी? डरकर किसी काम को छोड़ना तो कायरों का काम है। और कायर हिन्दुस्तानी इस महायुद्ध में सरकार के मुकाबले अन्त तक नहीं जूझ सकते।

जेल में कौन जा सकता है?

पूर्वोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि व्यसनग्रस्त, जाति पाँति के झूठे भेद रखने वाले, झगड़ालू, हिन्दू-मुसलमान में ऊँच-नीच मानने वाले और रोगी आदमी न तो जेल में जा ही सकते हैं और न वे वहां अधिक दिन टिक सकते हैं। देश-हित के नाम पर सन्मान मान कर जेल जाने वालों का शरीर, मन तथा आत्मा स्वस्थ-सशक्त होने चाहिए। रोगी आदमी अन्त में थक जाता है और हिन्दू-मुसलमान में उच्च-नीच का बखेड़ा करने वाला तथा व्यसन में फसने वाला, चाय, बीड़ी अथवा अन्य वस्तु के नाम पर बिक जाने वाला आखिर तक नहीं ठहर सकता।

पढ़ाई

दिन भर काम करें तो भी सवेरे शाम तथा रविवार के दिन पढ़ने को कुछ समय मिल सकता है। और जेल में अन्य झंझट न होने के कारण पढ़ भी मजे से पाते हैं। बहुत थोड़ा समय मिलने पर भी रस्किन की दो प्रख्यात पुस्तकें,

थारो के निबन्ध, बायबिल के कुछ-भाग, गेरीबाल्डी का जीवनचरित्र (गुजराती में), लार्ड बेकन के निबन्ध (गुजराती में), हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में दो और पुस्तकें मैंने अंग्रेजी में पढ़ीं। रस्किन तथा थारो के लेखों में स्थान स्थान पर सत्याग्रह भरा पड़ा है। मि० दिवान ने हम लोगों के लिए गुजराती पुस्तकें भेजी थीं। इसके सिवा भगवद्गीता प्राय सदा ही पढ़ी जाती थी। इस पठन का परिणाम यह हुआ कि मेरा हृदय सत्याग्रह के विषय में अधिक पक्का हो गया और मैं कह सकता हूँ कि जेल में ऐसी कोई बात नहीं जिससे जी ऊब उठे।

दो प्रकार के विचार।

ऊपर जो कुछ मैं लिख चुका हूँ उस से दो प्रकार के खयाल पैदा हो सकते हैं—

१—एक तो यह, कि जेल में जाकर बन्दी होना, मोटा खुरदरा और खराब कपड़ा पहनना, खराब खाना खाना, भूखों मरना, दारोगा की ठोकरें खाना, काफिरों में बैठना, पसन्द बे-पसन्द सब काम करना, हमेशा ऐसे दारोगा की टहल करना जो खुद हमारी नौकरी करने लायक हैं, अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से न मिल सकना, किसी को चिट्ठी न लिख सकना, आवश्यक वस्तु न पाना, खूनी और डाकुओं के साथ सोना—ये दुःख किस लिए उठावें? इससे तो मौत ही भली। जुर्माना देकर छूट जाय पर जेल न जाय। भगवान करे जेल में किसी को न जाना पड़े। ऐसे विचारों से मनुष्य का हृदय बिलकुल निर्बल हो जाता है और वह जेल से डरने लगता है, तथा वहां जिस शुभ कार्य के लिए वह जाता है उसे नहीं कर पाता।

दूसरा ख्याल यह होता है कि देश-हित के नाम पर, मान रक्षा के लिए, धर्म के निमित्त मुझे जेल जाना पडे तो यह मेरे सौभाग्य का सूचक है। जेल में दु ख किस बात का ? यहा तो मुझे बहुतों की तावेदारी करनी पडती है। उस के बेवज जेल में अकेले दारोगा की ही सेवा करनी पडती है। जेल में न मुझे किसी बात की चिन्ता। न खाने-कमाने की फिक्र। वहा तो और लोग रोज वक्त पर खाना पकाते हैं और शरीर की रक्षा स्वय सरकार करती है। इन सब के लिए मुझे कुछ देना भी नहीं पडता। काम ऐसा मिलता है कि खासा व्यायाम हो जाता है। सारे व्यसन सहज ही छूट जाते हैं। मन स्वतन्त्र रहता है। ईश्वर-भजन का लाभ सहज ही मिल जाता है। यहा शरीर मात्र बन्दी होता है और आत्मा तो अधिक स्वतन्त्र हो जाता है। मैं नियम से रोज उठता हू। शरीर की रक्षा का भार उसी पर है जिसने इसे बन्दी बनाया है। इस प्रकार हर तरह मैं आजाद हू। जब मुझ पर मुसीबत आती या पापी दारोगा मार-पीट कर बैठता है तब मुझे धीरज रखने का अभ्यास होता है। मैं यह समझ कर खुश होता हू कि उनका सामना तो करना पडता है। ऐसे विचार से जेल पवित्र और सुखदायक मानना या बनाना तो अपने ही हाथ में है। मन की दशा विचित्र है। थोडे ही में यह दुखी और थोडे ही में वह सुखी हो जाता है। मुझे आशा है कि मेरी यह दूसरी कहानी पढ कर पाठक यही निश्चय करेंगे कि देश के लिए अथवा धर्म के नाम पर जेल जाना, वहा तकलीफ उठाना अथवा और तरह के सङ्कट सहन करना अपना कर्तव्य है। इसी में हमें सुख है।

मेरे जेल के अनुभव।

[तीसरी वार]

बोकसरस्ट।

२५ फरवरी को, जब मुझे तीन मास की सख्त क़ैद की सजा मिली और मैं अपने क़ैदी भाइयों तथा अपने पुत्र से वोकसरस्ट की जेल में मिला तब मुझे आशा नहीं थी कि इस तीसरी वार की जेलयात्रा के विषय में मुझे कुछ कहने सुनने या लिखने की जरूरत होगी। परन्तु मेरी यह धारणा मनुष्य की अन्य अनेक धारणाओं की तरह असत्य सिद्ध हुई। इस बार मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ वह पिछले अनुभवों से निराला है। उससे मुझे जो जो शिक्षायें मिलीं वे वर्षों के परिश्रम और अभ्यास से भी नहीं मिल सकतीं। मैं इन महीनों को अमूल्य समझता हूँ। इस थोडी ही अवधि में मैंने सत्याग्रह के कितने ही चित्र हूबहू देखे और मैं अपने को २५ फरवरी से पहिले की अपेक्षा अब अधिक बलवान सत्याग्रही समझता हूँ। इसके लिए मुझे ट्रान्सवाल की सरकार का कृतज्ञ होना चाहिए।

कितने ही अधिकारियों को भी निश्चय सा था कि इस बार मुझे ६ मास से कम की सजा न मिलेगी। मेरे साथी—वृद्ध और प्रसिद्ध भारतवासी—मेरा पुत्र, ये सब ६ मासकी कैद भोग रहे थे। अतएव मैं भी यही मनाता था कि भगवान् करें, अधिकारियों की आशा पूरी हो। लेकिन अभियोग

मुझ पर कानून की दफा की रू से लगाया गया था। इससे मुझे डर था कि ३ ही मास की सजा मिलेगी और ऐसा ही हुआ भी।

कैद की सजा मिलने पर मैं मिस्टर दाऊद मुहम्मद, मि० रुस्तम जी, मि० सोराब जी, मि० पिल्ले, मि० हजूरा सिंह, मि० लालबहादुर सिंह-इत्यादि, सत्याग्रहियों से बड़े हर्षपूर्वक मिला। कोई १० कैदियों को छोड कर बाकी सब के लिए जेल के मैदान में डेरों में सोने का प्रबन्ध था। इससे यहां का दृश्य जेल की अपेक्षा लड़ाई की छावनी का सा ही अधिक देख पडता था। डेरों में सोना सब को पसन्द आया। यहां खाने का भी आराम था। रसोई बनाना पहले की तरह हमारे ही सिपुर्द था। इससे मनमाने ढँग से खाना पाते थे। हम सब मिला कर ७७ सत्याग्रही कैदी थे। काम जो कुछ और जिस किसी को दिया जाता था वह आसान और कम था। मैजिस्ट्रेट की कचहरी के सामने वाली सडक बनानी थी। उसके लिए पत्थर, कंकडी आदि खोदने और बराबर जमाने पडते थे। इसके बाद मदरसे के मैदान में घास छीलनी पडती थी। परन्तु लोग खूब मजे में और आसानी से काम करते थे।

यों तीन दिन तक मैं भी स्पेन-टोली के जमादार के साथ काम पर गया था। किन्तु बीच ही में तार आ गया, कि मैं बाहर कार्य के लिए न भेजा जाऊं। मैं निराश हो गया; क्योंकि मुझे बाहर जाना पसन्द था। उस से मेरा स्वास्थ्य सुधरता था और बदन गठीला होता था। साधारणतः मैं हमेशा दो बार भोजन करता था। परन्तु वोकसरस्ट की जेल में काम के श्रम के कारण शरीर दो के बजाय तीन-बार खाना

मागता था। झाड़ू देने का काम मिला। इस काम से दिन मुश्किल से कटता था। परन्तु इस काम के भी छूटने का वक्त आ गया।

वोकसरस्ट क्यों छूटा ?

दूसरी मार्च को खबर मिली कि मुझे प्रिटोरिया (ट्रान्सवाल) भेजने का हुक्म है। उसी दिन मेरी तैयारी की गई। पानी बरस रहा था। राह-बाट खराब थी। इस दशा में भी मुझे अपनी गठरी उठाकर जाना पड़ा। दारोगा साथ था। शाम की ट्रेन से तीसरे दर्जे की गाडी में वह मुझे लिवा ले गया।

कितने ही लोगों को, इस घटना से, यह ख्याल हुआ कि मामला ठण्डा हुआ चाहता है। कुछ लोगों ने समझा कि मुझे अलग ले जाकर अधिक कष्ट देने का विचार है। और बहुतों ने तो यह भी विचार किया कि हो न हो इस हेतु से कि सर्वसाधारण की सभा में चर्चा न हो, इन्हें प्रिटोरिया में रख कर अधिक सहुलियत देने और अधिक रिआयत करने के लिए ले गये है।

वोकसरस्ट छोडना मुझे अच्छा न लगा, वहा हम दिन में जिस तरह आनन्द से रहते थे, रात में भी बात-चीत-किस्स कहानी-कह कर आराम से रहते थे। मि० हजूरा-सिंह तथा मि० जोशी ये दो सज्जन तो खासकर बहुत ही सम्भाषण किया करते। उनके सवाल जबाब भी व्यर्थ के न हुआ करते थे, ज्ञान-ध्यान की बातें उनमें भरी रहती थीं। जहा दिन रात इस प्रकार सुख चैन से गुजरते थे और जहा अधिक से अधिक हिन्दुस्तानी कैदियों की छावनी थी वहा से चला जाना किस सत्याग्रही को अच्छा लग सकता है? परन्तु, यदि

मनुष्य की इच्छा के अनुसार काम होते हों तो फिर वह आदमी न कहा जाय। मैं तो चल दिया। रास्ते में मि० काजी से हुआ सलाम करके मैं और दारोगा गाडी में घुसे। जाडा पड रहा था। सारी रात पानी बरसा। मुझे ओढना ओढ़ने की इजाजत मिली। इससे कुछ आराम मिला। जाडा रुका। खाने के लिए मेरे साथ रोटी और पनीर (Cheese) दिया गया था। मैं तो खाकर चला था इस लिए वह दारोगा के काम आया।

प्रिटोरिया की जेल में—शुरुआत।

तीसरी तारीख को प्रिटोरिया पहुँचा। यहा मुझे सब कुछ नया मालूम हुआ। जेल भी नई बन गई थी। आदमी भी नये। मुझसे खाने को कहा गया, परन्तु मेरी तो इच्छा ही न थी। तब "मीलीमिल" का "पॉरीज" मेरे आगे रख दिया गया। मैंने एक चमचा भर चख कर उसे हटा दिया। यह देखकर दारोगा को अचरज हुआ। मने कहा–मुझे भूख नहीं। वह हँसा। इसके बाद मे दूसरे दारोगा की हिरासत में रक्खा गया। उसने कहा, "गाधी, टोपी उतार"। मैने टोपी उतार ली। फिर उसने पूँछा—"तू गाधी का लडका है?" मने कहा–"नहीं, मेरा लडका तो बोफसरस्ट में छ महीने की कैद भोग रहा है। तब मैं एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। वहा मे घूमने-टहलने लगा। थोडी देर में दारोगा ने दरवाजे के पास वाले सूराख से झाक कर मुझे चलता-फिरता हुआ देखा। उसने कहा—"गाधी तू घूम मत। एक जगह बैठा रह। फर्श खराब होती है।" मैने टहलना बन्द कर दिया। एक कोने में खडा हो गया। पास पढ़ने के लिए भी कुछ न था। मेरी किताबें

मुझे मिली नहीं थी। कोई ८ बजे मुझे बन्द किया था। दस बजे डाक्टर के पास लिवा ले गये। डाक्टर ने मुझ से यह पूछ कर कि तुम्हें कोई छूत की तो बीमारी नहीं है, रवाना कर दिया। मैं फिर बन्द कर दिया गया। ११ बजे मुझे एक दूसरी छोटी कोठरी में ले गये। वहा मैं बहुत देर तक रहा। ऐसी कोठरिया एक एक आदमी के लिए बनाई गई हैं। उनकी लम्बाई चौडाई कोई १०×७ फीट होगी। फर्श काला है, अल्कतरा पुता हुआ है। उसकी चमक-दमक बनाये रखने के लिए दारोगा कोशिश किया करते हैं। हवा और प्रकाश के लिए काच की और लोहे के सीकचे वाली बहुत ही छोटी २ खिडकिया हैं। कैदियो को रात में देखने भालने के लिए बिजली की बत्तिया रहती हैं। बत्तियां कैदी के सुभीते की नही, क्योंकि उनसे इतनी रोशनी नही होती कि पढ़ा जा सके। बत्ती के पास जाकर जब मैं खडा रहता तब बडे अक्षरों की पुस्तक पढ़ सकता था। बत्ती ठीक आठ बजे बुझा दी जाती है। पर रात में कोई पाच छ बार जलाई जाती है और उसके उजियाले में दारोगा उस सूराख से भाक कर कैदियों को देख जाया करता है।

११ बज जाने के बाद डिपुटी गवर्नर आये। उनसे मैंने तीन बातें कही। एक तो किताबों की माग, दूसरी मेरी स्त्री की बीमारी के कारण उसे पत्र भेजने की इजाजत और तीसरे बैठने के लिए एक बेञ्च। पहली का उत्तर-विचार करूगा, दूसरी का उत्तर—चिट्ठी लिखना, तीसरी का उत्तर "नही" मिला। मैं ने गुजराती में पत्र लिखा। उसपर उसने रिमार्क लिखा कि आयन्दा अगरेजी में चिट्ठी लिखी जाय। म ने कहा मेरी पत्नी अगरेजी नही जानती। मेरी चिट्ठी उसके लिए दवा का काम

देती है। कोई नई अथवा विशेष बात तो मुझे लिखनी थी नहीं, तथापि अनुमति न मिली। अंगरेजी में लिखने की आज्ञा से लाभ उठाने से मैंने इनकार कर दिया। उसी दिन शाम को मुझे मेरी किताबें भी मिल गईं।

दोपहर को खाना खाया। बन्द कोठरी में खड़े २ ही खाना खाना पड़ा। कोई तीन बजे मैंने स्नान करने की अनुज्ञा चाही। नहाने की जगह मेरी कोठरी से कोई १२५ फीट के फासिले पर थी। दारोगा ने कहा, "ठीक है, मगर कपड़े उतार कर नंगे होकर जाओ।" मैंने कहा—इसकी क्या आवश्यकता? मैं अपने कपड़े परदे के ऊपर रख दूँगा। तब उसने इजाजत दी और कहा कि देर मत लगाना। अभी मैं शरीर पोंछ भी न पाया था कि हज़रत ने पुकार मचादी— "गान्धी, तैयार हो गये?" मैंने कहा—अभी होता हूँ। किसी हिन्दुस्तानी का मुँह तो यहाँ भाग्य ही से देखने को मिलता था। शाम को कम्बल, दोहर और चटाई सोने के लिए मिली। चौकी वगैरः न थी। पाखाने में भी दारोगा साथ रहता। वह मुझे जानता न था। इस लिये कहता—"साम" अब निकल! मगर "साम" को तो बडी देर तक पाखाने में बैठने की आदत थी, सो वह उठे कैसे? अगर उठे तो उसे काम अधूरा छोडना पडे। कभी कभी दारोगा अथवा कोई काफिर ही इस तरह खड़ा रहता और "उठ—उठ" कह कर चिल्लाया करता।

काम दूसरे रोज मिला भी तो फर्श और दरवाजे साफ करने का, अर्थात् उन्हें पालिश करने का। दरवाजों पर रोगन चढा हुआ था। वे थे भी लोहे के बने हुए। फिर उन पर और पालिश करने की क्या जरूरत? मैंने एक एक दर-

याज को घसने में तीन तीन घण्टे लगाये पर मुझे तो उनमें कुछ भी फर्क न देख पड़ा। हाँ, फर्श में अलबत्ता कुछ रूपान्तर दिखाई दिया। मेरे साथ काफिर भी काम करते थे। वे अपनी सजा की कहानी टूटी-फूटी अंगरेजी में कहते और मुझ से अपनी सजा का हाल पूछते जाते थे। कोई पूछता था, क्या तूने चोरी की है? और कोई पूछता-क्या यहाँ शराब बेंचने आया है? उनका थोडा बहुत आशय समझ लेने पर जब मैं उन्हें अपनी कथा कहता तब वे कह उठते-"आल राइट" (अच्छा किया)। "अमलु गुवेटा" (गोरे खराब हैं)। "डोन्ट पे फाइन" (जुरमाना न दाखिल करना)। मेरी कोठरी पर लिखा था 'आयस्ले टेटेतु' (एकान्त-खास कालकोठरी)। मेरी कोठरी के पास ही पांच और कोठरियाँ वैसी ही देखने में आई। मेरा पड़ोसी एक काफिर था। वह खून के प्रयत्न करने का अपराधी था। उसके पीछे तीन और काफिर थे। इन पर सृष्टि-विरुद्ध व्यभिचार करने का अपराध प्रमाणित हुआ था। ऐसे साथियों के बीच, ऐसी स्थिति में, मैंने प्रिटोरिया के जेलखाने में अनुभव प्राप्त करना आरम्भ किया।

भोजन।

ऊपर लिखी दशा के अनुसार ही भोजन भी था। सवेरे 'पू पू' दोपहर को तीन दिन 'पू पू' और आलू अथवा गाजर। तीन दिन बाल (बीन्स) और शाम को बिना घी के चावल। बुधवार को दोपहर को बाल (बीन्स), चावल, घी तथा रविवार को 'पू पू' के साथ चावल और घी मिलता था। बिना घी के चावल मुश्किल से खाये जाते थे। अतएव घी न मिलने तक चावल न खाने का मैंने निश्चय किया। सवेरे तथा दोपहर को 'पू पू' कभी तो कच्चा और कभी खब।

की तरह ढीला होता था। दाल (बीन्स) भी कभी कभी कच्चे मिलते थे। तथापि साधारणत दाल ठीक पकते थे। तरकारी के दिन छोटे छोटे चार आलू (ये आठ औंस समझे जाते हैं) और गाजर के दिन तीन नन्हीं २ गाजरें दी जाती थी। कभी कभी सवेरे चार या पाँच चमचा 'पू पू' मैं लेता परन्तु साधारण रीति से दो महीने मैंने दोपहर के भोजन पर बिताये। इस उदाहरण से जोहान्सबर्ग के हमारे कैदी भाइयों को जानना चाहिए कि जब हमारे ही भाई रसोई बनाते थे और कभी रह जाने पर उन पर वे क्रोध करते थे, यह उचित न था। वे देखें कि इस दशा में मैं किस पर गुस्सा होता? हां, यहां भी ऐतराज किया जा सकता है। पर मेरा ख्याल है कि ऐसी शिकायत हमें शोभा नहीं देती। जहाँ सैकड़ों कैदी सबर कर लेते हैं वहां शिकायत कैसी? शिकायत का उद्देश्य सिर्फ एक होना चाहिए। वह ऐसा हो कि और कैदी भी उसके कायल हों। कभी २ मैं दारोगा से कहता कि आलू थोड़े हैं तो वह और ला देता था। पर इस तरह कितने दिन कट सकते हैं? एक बार मैंने देखा कि दारोगा दूसरे के कटोरे में से मेरे लिए कुछ ला रहा है, तब से मैंने उससे कहना ही छोड़ दिया।

शाम को चावल में घी नहीं मिलता था, यह मुझे पहले से ही मालूम था और उसके इलाज करने की तदबीर भी मैंने सोच रक्खी थी। मैंने तुरन्त बड़े दारोगा पर यह बात प्रगट की। उसने कहा घी तो सिर्फ बुध तथा रविवार की दोपहर को मांस के बजाय ही मिल सकता है। अधिक बार दरकार हो तो डाक्टर से मिलो। दूसरे दिन मैंने डाक्टर से मिलने की दरख्वास्त की। फलत मैं उससे मिलने गया।

डाक्टर से मैंने निवेदन किया कि चरबी के बजाय हिन्दुस्तानी कैदियों को घी मिला करे। उस समय बड़ा दारोगा भी उपस्थित था। उसने कहा–गांधी की माँग उचित नहीं। आज तक कितने ही हिन्दुस्तानी चरबी खा चुके हैं और मांस भी भोजन कर चुके हैं। जो चरबी लेते हैं उन्हें सूखे चावल मिलते हैं। सब खुशी से खाते हैं। जब सत्याग्रही कैदी थे तब वे सब भी खाते थे। कैद में दाखिल होते और कैद से रवाना होती दफे उनका वजन लिया गया था। छूटती बार उन सब का वजन बढ़ गया था। डाक्टर ने पूछा–कहो, अब तुम्हारा क्या कहना है? मैंने कहा–यह बात मुझे नहीं जँची। तथापि अपने विषय में तो मैं कहता हूँ कि यदि मुझे बिलकुल घी के बिना ही रहना पड़ेगा तो मेरी तबियत जरूर खराब हो जायगी। डाक्टर ने कहा, तो तुम्हारे लिए रोटी का हुक्म देता हूँ। मैंने कहा–मैं कृतज्ञ हुआ, परन्तु मैंने खास अपने लिए निवेदन नहीं किया है। जब तक सब लोगों को घी का हुक्म न मिले, मैं रोटी नहीं ग्रहण कर सकता। तब डाक्टर ने कहा–तो फिर मुझे दोष न देना।

अब क्या किया जाय? बड़ा दारोगा अगर बीच में न बोलता तो हुक्म मिल जाता। उसी दिन मेरे आगे रोटी और चावल रक्खे गये। मैं भूखा था, पर सत्याग्रही इस तरह कैसे भोजन पा सकता है? मैंने दोनों चीजें न लीं। दूसरे दिन मैंने, डिरेक्टर से अर्ज करने की इजाजत चाही। इजाजत मिल गई। मैंने उनके पास अर्जी भेजी। उसमें मैंने जोहान्सबर्ग तथा वोकसरस्ट के उदाहरण, देकर कैदियों के लिए घी मिलने की प्रार्थना की। इस अर्जी का उत्तर १५ दिनों में मिला। वह यह था कि हिन्दुस्तानियों के लिए जब तक दूसरे

प्रकार के भोजन की तजवीज न हो तब तक मुझे हर रोज चावल के साथ घी दिया जाय। मुझे ऐसी ही खबर न दी गई थी, इस कारण मैंने पहले दिन चावल, घी, रोटी, खुशी खुशी खा ली। मैंने कहा कि रोटी की जरूरत नहीं, पर उत्तर मिला कि डाक्टर का हुक्म है, इस लिए रोटी तो मिलेगी ही। अतएव रोटी भी १५ दिनों तक ली। परन्तु मेरी खुशी एक ही दिन तक रही। दूसरे दिन मैंने जाना कि हुक्म तो ऊपर लिखे मुताबिक है। अतएव मैंने फिर से घी चावल और रोटी लेने से इनकार कर दिया। बड़े दारोगा से मैंने कहा कि जब तक सब लोगों को घी न मिलेगा, मैं यह नहीं ग्रहण कर सकता। डिपुटी गवर्नर भी उसके साथ थे। उन्होंने कहा यह तुम्हारी इच्छा पर अवलम्बित है। मैंने फिर डिरेक्टर को लिखा। मुझे बतलाया गया था कि भोजन नेटाल की तरह मिलेगा। मैंने उसकी आलोचना की, और मैं स्वयं घी इत्यादि नहीं ले सकता आदि बातें उस में लिख दीं। अन्त में कोई डेढ महीने के बाद हुक्म आया कि जहां २ हिन्दुस्तानी कैदी अधिक हों, वहां २ घी मिला करे। इस तरह विजय प्राप्त करने पर डेढ मास बाद मेरे रोजे (उपवास) छूटे। मैंने अन्त के कई मास तक चावल, घी और रोटी खाई। मैंने सवेरे भोजन करना बन्द कर दिया था और चावल रोटी लेना शुरू करने के बाद भी दोपहर को जब "पू पू" आता तो वह भी कभी कभी आठ-दस चम्मच ले लेता। 'पू पू' हमेशा तरह तरह से बनाया जाता था। रोटी तथा घी से मुझे काफी तसल्ली मिल जाती थी। इससे तबियत भी दुरुस्त हो गई थी।

मैंने अभी ऊपर कहा है, कि मेरी तबियत दुरुस्त हो गई थी। इसका कारण यह था कि जब मैं एकाहारी हो रहा

था तब मेरी तबियत खराब हो गई थी, कमजोरी आ गई थी और कोई दस दिन तक मुझे सख्त आधा-सीसी की बीमारी रही थी। आंखें तथा छाती के बिगड़ जाने के लक्षण जान पड़ने लगे थे।

काम की बदली।

छाती खराब होने का कारण इस तरह था। मैं ऊपर लिख चुका हूं कि मुझे फर्श तथा दरवाजा साफ करने का काम दिया गया था। कोई दस दिनों तक यह काम करने के बाद फटे हुए कम्बलों को सीकर जोड़ने का काम मिला। यह काम बारीक था। सारा दिन कमर झुका कर फर्श पर काम करना पड़ता था। सो भी कोठरी में बैठ कर। इससे शाम को मेरी कमर दर्द किया करती थी। मेरी आंखों में भी दर्द हुआ करता। मेरी राय में कोठरी की हवा तो हमेशा ही खराब होती है। बड़े दारोगा से मैंने एक बार कहा भी कि मुझे बाहर खोदने इत्यादि के काम पर लगा दीजिए और यह नहीं तो खुली हवा में कम्बल इत्यादि सीने दीजिए। पर उसने दोनों बातें नामंजूर कीं। इस बारे में भी मैंने डिरेक्टर को लिखा। अन्त में डाक्टर का हुक्म हुआ। यदि मुझे खुली हवा में काम करने की इजाजत न मिलती तो मेरे ख्याल में मेरी तबियत अधिक खराब हो जाती। इस हुक्म के मिलने में कितनी ही अड़चनें दरपेश हुई थीं परन्तु उनके वर्णन की यहां ज़रूरत नहीं। इससे इतना तो हुआ कि मेरे भोजन में परिवर्तन हुआ और खुली हवा में काम करने का भी अवसर मिला। यों मुझे दोहरा लाभ हुआ। जब कम्बल बुनने का काम मिला तब मैंने सोचा था कि इस एक कम्बल के बुनने में एक हफ्ता लगेगा और तब तक मेरी अवधि समाप्त हो

जायगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत, पहला कम्बल बुनने के बाद तो मैं एक जोड़ी दो दिन में ही तैयार करने लगा। तब और काम भी अर्थात् तकीयान में ऊन भरना, टिकेट पाकेट सीना इत्यादि काम मिल गये।

मैंने बहुतेरे सत्याग्रहियों से कहा कि यदि तुम बीमार बनकर—स्वास्थ्य खराब करके—जेल के बाहर निकलोगे तो तुम्हारे सत्याग्रह की कमजोरी समझी जायगी। धीरज रख कर हम उचित उपाय का अवलम्बन कर सकते हैं। चिन्ता करने से भी स्वास्थ्य खराब होता है। सत्याग्रहियों को तो जेल को महल समझना चाहिए।

मैं इस विचार से बड़ा दुखी होता कि कहीं मुझे स्वयं न बीमार होकर जाना पड़े। पाठकों को याद रखना चाहिए कि मेरे लिए जो घी का हुक्म हो गया था उसकी चेष्टा न करता तो सत्याग्रह में मेरी तबीयत खराब हो जाती। परन्तु औरों के लिए यह नियम लागू नहीं। प्रत्येक कैदी जब वह अकेला जेल में हो तो अपनी निजी शिकायत दूर करने की कोशिश कर सकता है। प्रिटोरिया में मेरे ऐसा न करने का खास सबब था। इसी कारण मैं अपने अकेले के लिए घी का हुक्म नहीं मान सकता था।

और और रद्दोबदल।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि जो दारोगा मुझ पर तैनात था वह मेरे साथ कुछ कड़ा व्यवहार करता था। पर यह हालत अधिक दिनों तक न रही। जब उसने जाना कि मैं तो स्वयं सरकार से भी भोजन इत्यादि विषयों में झगड़ा कर बैठता हूँ, परन्तु साथ ही उसकी सभी आज्ञाओं का पालन भी करता हूँ, तब उसने अपना बरताव बदल दिया। वह मुझे

जो मन आता करने देता। यहां तक कि पाखाने और नहाने इत्यादि की अड़चन दूर हो गई। इसके सिवा यह यह भी नहीं जताता कि उसका हुक्म मुझ पर चल सकता है। उस का तबादला होने पर उसकी जगह जो दूसरा दारोगा आया वह तो बड़ा ही उदार था। वह मुझे उचित और योग्य सुभीता देने की चिन्ता रखता। वह कहता कि जो आदमी अपनी जाति के लिए लड़ता है उसे मैं पसन्द करता हूं। मैं स्वयं लड़ने वाला हूं। तुम्हें मैं कैदी नहीं समझता। वह इस तरह बड़ी आशा भरी बातें करता।

थोड़े दिन बाद मुझे सवेरे शाम आधे आधे घंटा तक जेल की गली में टहलने की इजाजत मिली। जब बाहर बैठ कर काम करने लगा तब भी यह सिलसिला जारी रहा। जिन कैदियों को बैठकर काम करना पड़ता था उन पर भी यह नियम लागू समझा जाता है।

मेरी मांग के अनुसार मुझे बेंच नहीं मिली, थोड़े दिनों के बाद बड़े दारोगा से उसने वह भी दिलवा दी। जनरल स्मट्स की ओर से मुझे दो धार्मिक पुस्तकें भी मिली थीं। इन बातों से मैंने अनुमान किया कि मुझे जो कष्ट दिया जा रहा है वह उनकी आज्ञा से नहीं बल्कि उनकी तथा औरों की लापरवाही और मुझे काफिरों में गिनने के कारण। और यह बात तो मैं अच्छी तरह जान गया कि मैं जो अकेला रक्खा गया हूं उसका कारण केवल यही है कि मैं औरों से बात-चीत न कर सकूं। कुछ कोशिश करने पर मुझे नोटबुक और पेंसिल की भी इजाजत मिली।

डिरेक्टर से मुलाकात।

मेरे प्रिटोरिया पहुंचने के आरम्भ में खास तौर पर

आज्ञा लेकर मि० लीचिन स्टाइन मुझ से मिले । ये सिर्फ आफिस के काम के सम्बन्ध में आये थे। परन्तु उन्होंने मुझ से अपनी राजीखुशी के हालचाल वगैरह भी पूछे । इस का जवाब देने में मैं खुश न था । परन्तु उन्होंने जब बहुत ही आग्रह किया तब मैंने कहा—मैं जियाद तो नहीं कहता परन्तु इतना ही कहता हूं—मेरे साथ बडा निर्दय-घातक-बरताव हो रहा है। इस तरह मुझे सताकर जनरल स्मट्स मुझे हराना-सत्याग्रह से हटाना-चाहते हैं, परन्तु यह तो कभी सम्भव नहीं । जो जो यातनायें मुझे दी जायगी, मैं सहने को तैयार हूं । मेरा मन शान्त है। यह बात आप प्रकट न कीजियेगा। जब छूट जाऊंगा, स्वयं सब बातें संसार के सम्मुख रक्खूंगा, तथापि मि० लीचिन स्टाइन ने यह कथा मि० पोलक से कह दी। मि० पोलक भी उसे न हजम कर सके। उन्होंने भी औरों से कह सुनाई। जब मि० डेविड पोलक ने लार्ड सेलबोर्न को लिखा और तहकीकात आरम्भ हुई, तब डिरेक्टर मुझ से मिलने आये। उनसे भी मैंने वेही बातें कहीं। इसके अतिरिक्त उनसे मैंने उन त्रुटियों का भी जिक्र किया जिनका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूं। इसके कोई दस दिन बाद मुझे सोने के लिए चौकी, तकिया तथा रात को पहनने के लिए कमीज और नाक पोंछने को रूमाल मिले। इस विषय पर मैंने लेख लिखाया है कि इस तरह प्रत्येक हिन्दुस्तानी कैदी को इन चीजों की आवश्यकता है। यदि सच कहा जाय तो सोने-बैठने के बारे में गोरों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी अधिक नाजुक हैं। बिना तकिया के काम चलाना उनके लिए बडा कठिन है।

इस तरह खाने तथा खुली हवा में काम करने के

सुभीते के साथ सोने की भी सुविधा हो गई। पर मेरी तक़दीर तो आगे दौड़ती थी। चौकी मिली भी तो वह खटमलों से भरी हुई। मैं तो कोई दस दिनों तक उसे काम में न लाया। फिर जब बड़े दारोगा ने उसे ठीक कराया तब मैं उस पर सोने लगा। पर इस बीच में मुझे फर्श पर कम्बल डालकर सोने की आदत पड़ गई थी। इस से चौकी के कारण मुझे कुछ विशेष फेर-फार नहीं जान पड़ा। तकिये का काम मैं अपनी पुस्तकों से लेता था। अतएव तकिया मिलने से भी कोई विशेषता अनुभव न हुई।

हथकड़ी पहनाई गई।

आरम्भ में मेरे साथ जो बरताव किया जाता था, और उससे जो विचार मेरे मन में आये थे, नीचे लिखी घटना से वे और भी पुष्ट हो गये। चार ही पांच दिनों के बाद मिसेज़ पिले के मुकदमे में मुझे गवाही देने का सम्मन मिला। मुझे अदालत में लिया ले गये। उस समय मेरे हाथों में हथकड़ी डाली गई। दारोगा ने उसे कसा भी ज़ोर से था। मैं तो समझता हूं यह अनजान में ही किया गया था। बड़ा दारोगा भी मुझे देखने आया था। उससे मैंने एक किताब ले जाने की मन्जूरी मांगी। उसने समझा कि बेड़ी से मैं शरमाता हूं। उसने कहा कि पुस्तक दोनों हाथों में थाम लो ताकि बेड़ी देख न पड़े। यह सुन कर मैं तो हँस पड़ा। बेड़ी डालने में मैंने तो अपना गौरव समझा। जो पुस्तक मैंने ली थी वह अनायास ही ऐसी मिल गई थी, जिसके नाम का अर्थ हिन्दी में होता है, "ईश्वर का इजलास तेरे हृदय में है।" मैंने मन में कहा यह भी मौका अच्छा रहा। बाहर से मैं चाहे जितना सङ्कट भोगूं पर यदि मेरा हृदय ऐसा है कि उस में

ईश्वर निवास कर सके तो फिर मुझे किसी की भी परवाह नहीं। इस ढग से मुझे अदालत में पैदल जाना पडा। लौटती वार जेल की ठेला गाडी आई थी। हिन्दुस्तानियों को शायद यह खबर लग गई थी कि मैं जाने वाला हू। क्योंकि अदालत के सामने कितने ही हिन्दुस्तानी जमा थे। उनमें से मिस्टर व्यम्यकलाल व्यास मिस्सेज पिल्ले के वकील के द्वारा मुझसे मिल सके थे। एक बार और मुझे अदालत जाना पडा था। उस दफे भी हथकडी डाली गई थी। परन्तु जाती आती वार ठेला गाडी थी।

सत्याग्रह की महिमा।

ऊपर मैंने जो बातें लिखी हैं उनमें कितनी ही तो नगण्य हैं। परन्तु उनके सविस्तर वर्णन का उद्देश्य यह है कि छोटी बडी सब बातों में सत्याग्रह लागू हो सकता है। छोटे दारोगा ने मुझे जो शरीर-कष्ट दिये उन्हें मैंने स्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि मेरा मन शान्त रहा। यही नहीं, बल्कि वे ही अडचनें उन्ही लोगों को दूर करनी पडीं। यदि मैं उनका प्रतिरोध करता तो मेरा मनोबल बिखर जाता और मुझे जो बडे काम करने थे वे न हो पाते। इसके सिवा दारोगा मेरे शत्रु हो जाते। भोजन के विषय में अपनी टेक रखने, आरम्भ में दु ख सहन करने से वह अडचन भी दूर हो गई। क्षुद्र बातों के विषय में भी ऐसा ही समझा जा सकता है। परन्तु बडे से बडा लाभ तो यह हुआ कि शारीरिक कष्ट सहन करने से मैं अपने मन का बल बहुत ही बढ़ा हुआ देखता हू। इन तीन महीनों ने मुझे बडा लाभ पहुचाया। इसी की बदौलत आज मैं और भी अधिक कष्ट भोगने को तैयार हू। मैं देखता हू कि सत्याग्रही की सहायता ईश्वर

सर्वदा करता है। और सत्याग्रही की परीक्षा लेने में भी उसको उतना ही कष्ट दिया जा सकता है जितना वह जगत् कर्ता सहन कर सकता है।

मैंने क्या पढ़ा ?

मेरे दुःख की अथवा सुख की, दोनों की कहानी तो पूरी हो गई। इन तीन महीनों में मुझे कितने ही लाभ हुए। उन सब में बड़ा लाभ मैंने यह पाया कि मुझे पढ़ने का खूब मौका मिला। मैं स्वीकार करता हूँ कि पहले पहल तो किन्हीं विचारों के कारण मैं दुःख से ऊब उठता था। फिर जिनके मन है-हृदय है-उनका मन तो बन्दर की तरह छटपटाता है। ऐसे समय में बहुतेरे आदमी हिम्मत हार जाते हैं। उस समय मेरी पुस्तकों ने मेरा खूब बचाव किया। हिन्दुस्तानी भाइयों के समागम की अधिकांश पूर्ति मेरी पुस्तकों ने की। हमेशा कोई तीन घन्टे तक मुझे पढ़ने का अवकाश मिला करता था। सवेरे एक घण्टे फुरसत रहती थी, क्योंकि मैं खाना नहीं खाता था। वही समय बच रहता था। शाम को भी यही हाल था। और दोपहर को खाना भी खाता था और पढ़ता भी जाता था। शाम को तो यदि विशेष थका हुआ न होता तो बत्ती जलने के बाद भी पढ़ता था। शनिवार और रविवार को तो खूब ही वक्त मिलता। इस बीच में मैंने कोई तीस किताबें पढ़ीं, और कितनों ही का मनन भी किया। पुस्तकें अंगरेजी, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत तथा तामिल भाषाओं की थीं। अंगरेजी पुस्तकों में उल्लेख योग्य टालस्टाय, इमरसन तथा कारलाइल की पुस्तकें थीं। पहली दो पुस्तकों का सम्बन्ध धर्म से है। उनके साथ मैंने बाइबिल भी जेल में से ली थी। टालस्टाय के लेख तो इतने सरस और इतने सरल हैं कि

चाहे जो धर्म-प्रेमी उन्हें पढ़कर उन से लाभ उठा सकता है। उसकी पुस्तक पढ़कर साधारणतः यह विश्वास अधिक होता है कि वह मनुष्य जैसा कहता था वैसा ही करता भी रहा होगा।

कारलाइल की पुस्तक फ्रेंच राज-क्रान्ति पर है। वह प्रभावशाली है। उस से मैं जान गया कि हिन्दुस्तान की दुर्दशा मिटाने की राह हमें गोरी प्रजा से नहीं मिल सकती। मेरा विश्वास है कि राज-क्रांति से फ्रेंच प्रजा को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मैजिनी का भी यही खयाल था। इस विषय में बहुत मत-भेद है। उसका विचार करने का यह स्थल नहीं। परन्तु उस इतिहास में भी कितने ही सत्याग्रहियों के उदाहरण देखने में आये। गुजराती, हिन्दी और संस्कृत इन पुस्तकों में स्वामी जी की तरफ से भेजी गई वेद-शब्द-संज्ञा, भट्ट केशवराम के प्राप्त उपनिषद्, मि० मोतीलाल दीवान की भेजी हुई मनुस्मृति, फिनिक्स में छपा हुआ रामायण-सार' पातञ्जलि योगदर्शन, नाथूराम कृत आह्निक-प्रकाश, प्रोफेसर परमानन्द की दी हुई सन्ध्या की गुटका गीता तथा स्वर्गीय कवि रायचन्द की पुस्तकें, ये किताबें पढ़ीं। इन सब में से विचार करने की बहुत सामग्री मिली। उपनिषद् से मुझे बहुत शान्ति मिली। उसका एक वाक्य तो मेरे हृदय पर अङ्कित हो गया। उसका सार यह है-"जो कुछ करो आत्मा के कल्याण के लिए करो।" और भी कितनी ही विचारणीय बातें उपनिषदों में मुझे मिलीं। परन्तु सब से अधिक सन्तोष कवि रायचन्द की पुस्तकों से मिला। उनके लेख तो मेरी राय में सब के आदर के पात्र हैं। टालस्टाय की तरह उनकी शैली भी उच्चकोटि की है। इस के तथा सन्ध्या की

रास के बाहर के हिन्दुस्तानियों को भी शामिल जानना चाहिए।

उपसंहार।

मेरी इच्छा है कि इस कहानी को पढ़ कर, जिन्हें देश पर कलक नहीं है, वे लोग अपने देश से प्यार करें, और सत्याग्रही बनें तथा जिन्हें कलक है वे उस पर दृढ़ रहें। जिन्होंने अपने धर्म को नहीं जाना उन्हें अपने देश पर सच्ची कलक नहीं हो सकती। मेरी यह भावना अधिक दृढ़ होती जाती है। और विषयों में तो —

अलख नाम धुन लागी गगन में
मगन भया मन्दिर में राजी
आसन मारी सुरत दृढ़ धारी
दिया अगम घर डेरा जी

और भी—

करना फकीरी क्या दिलगीरी
सदा मगन मन रहना जी—

के अनुसार दुनिया में रह कर भी विरागी और साधु हो सकते हैं।

हो हास अथवा हो रुदन उसकी प्रकट छवि देख लूं।
तो मैं जगत में मनुज-जीवन सफल अपना लेख लूं॥
जिन से कभी सुख स्वप्न में भी दर्श-सुख लेते बना।
भाती नहीं उनके मनों में और कोई भावना॥

इति।

'प्रताप कार्य्यालय' की कुछ पुस्तकें

देवी जोन।

अर्थात् स्वतन्त्रता की मूर्ति।

यह फ्रांस देश को विदेशियों की दासता की बेड़िया से मुक्त कर देने वाली वीर-बाला जोन आफ आर्क की जीवनी है। इस देवी को उसके शत्रुओं ने उसके अनन्य देश-प्रेम के लिए ही जीते जी चिता में जला दिया था। पुस्तक में फ्रांस की तत्कालीन अवस्था का भी वर्णन है। मुखपृष्ठ पर देवी जोन के चिता में जलते समय का रोमाञ्चकारी दो रंग का चित्र दिया गया है। पुस्तक इतनी रोचक और भावपूर्ण है कि कुछ ही महीनों में इसकी दो हजार प्रतियां बिक चुकी हैं। मूल्य ॥)

मेरे जेल के अनुभव।

इस पुस्तक के लेखक महात्मा गांधी हैं। सत्याग्रह का यथार्थ तत्व जानना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मूल्य ।=)

राष्ट्रीय वीणा।

'प्रताप' में देशभक्ति पूर्ण जो कवितायें प्रकाशित हुई हैं उन्हीं का इसमें संग्रह है। मूल्य ॥)

जर्मन जासूस की रामकहानी।

यह रामकहानी एक ऐसे आदमी की लिखी हुई है जो स्वयं जर्मनी के जासूसी महल में काम कर चुका है। इस में योरप के राष्ट्रों के दाव पेचों का खासा दिग्दर्शन है। इस पुस्तक की सचाई के विषय में इतना ही कहना पर्य्याप्त होगा कि इसके लेखक प्रसिद्ध जासूस डा० ग्रेव्ज के अमेरिका चले जाने पर इङ्गलैंड की पार्लियामेंट तक में प्रश्न हुए थे। पुस्तक पढ़ कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। मूल्य ।-)

हिन्दीप्रदीप ग्रन्थावली की तीसरी पुस्तक।

सौ अजान और एक सुजान

एक

प्रबन्ध कल्पना।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक

स्वर्गवासी पं० बालकृष्ण भट्ट रचित।

रेजीव, सत्सङ्गमरासुहितममलसङ्ग त्वरया विहाय
धन्योऽपिनिन्दा लभते कुलङ्गात्सिन्दूरबिन्दुर्विधवा ललाटे।

प्रकाशक—

महादेव भट्ट, यहियापूर, प्रयाग।

बदरी प्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में छपा

आषाढ़, १९७०

तीसरा मरतबा]

निवेदन।

निसर्गादारामे तरुकुलसमारोपसुकृती
कृती मालाकारो बकुलमपि कुत्रापि निदधे।
इदं को जानीते यदयमिह कोणान्तरगतो
जगज्जालं कर्त्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम्॥

जगन्नाथ पण्डितराज।

ऊपर के श्लोक के अनुसार भट्टजी ने उक्त चतुर माली के समान हिन्दी साहित्य की वाटिका सजाने के लिये जहां बहुत से ग्रन्थ या लेख के वृक्ष या लतायें लगायीं वहा जैसे उस माली ने एक कोने में बकुल (मौलसरी) का वृक्ष लगाया उसी तरह से-किसी आशा से नहीं वरन् अपने हिन्दी लिखने के चस्के में आ स्वाभाविक रूप से—इस "सौ अजान और एक सुजान" को भी लिख डाला। कौन जानता था कि किसी एक कोने में पड़ा हुआ उस बकुल वृक्ष के समान, जो अपने फूल की मीठी २ सुगन्धि से संसार भर को सुगन्धित कर देता है, इस छोटी सी पुस्तक की यह नौबत आवेगी और हिन्दी के प्रेमीजन इसे इतने प्रेम से अपनावेंगे कि यह "हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन" की "प्रथमा परीक्षा" में पाठ्य पुस्तक नियत की जाय, यहीं तक नहीं वरन अपनी मीठी सुगन्ध इसने

इतना फैलाया कि वह काशी के "हिन्दू विश्वविद्यालय" तक पहुची और यह पुस्तक उक्त Benares Hindu University (काशी विश्वविद्यालय) के Admission Examination (प्रवेश परीक्षा) के course (पाठ्य पुस्तकों) में रक्खी गई। जब दो बड़े बड़े मुख्य व प्रतिष्ठित स्थानों तक इसकी पहुच हो गई है तब हमें बहुत कुछ आशा है कि यह सरकारी Universities में भी आदरपूर्वक स्थान पावे। जो बातें भट्टजी अपने जीवन में चाहते थे वह उनके जीवन में न पूरी हुई इसका दुख है पर "देर आये दुरुस्त आये" के समान अपने प्रेमियों के बीच अपनी प्रतिभा को आदरपूर्वक प्रसार पाते हुये देख निस्सन्देह उनकी आत्मा सन्तुष्ट वा आनन्दित होगी।

प्रथम प्रथम इस प्रबन्ध को भट्टजी ने स्वसम्पादित "हिन्दी प्रदीप" के लिये लिखा था और यह उसी के १४, १५, १७ तथा १८वीं जिल्दों में पूरा हुआ, फिर अपने कई मित्रों और रसिक पढनेवालों के अनुरोध से सन् १९०६ ई० में भट्टजी ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। पहिला संस्करण इसका केवल ५०० प्रतियों का हुआ पर उस समय के हिन्दी के प्रेमी ऐसे न निकले कि टेंट से दाम निकाल इसे खरीद कर पढते। मुफ्त लेकर पढनेवाले प्राय, बहुत से सच्चे हिन्दी के प्रेमी मिले इससे केवल १०० या १५० प्रतियों को छोड बाकी सब योंही हिन्दीप्रेमियों की सेवा में पहुँची, इधर सन् १९१४ ई० में "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" ने इसे अपनी "प्रथमा परीक्षा" के लिये पाठ्य ग्रन्थ नियत किया और एक भी प्रति न रहने के कारण इसके दूसरे संस्करण की आवश्यकता पड़ी। भट्टजी ने हिन्दी की सेवा जो कुछ की है वह किसी से छिपी नहीं है। उन्होंने हिन्दी लिखकर सिवाय अपने टेंट से कुछ देने के हिन्दी की बदौलत कुछ

पैदा नहीं किया कि उसे हम लोगों के लिये छोड़ जाते जिससे उनके बहुत से ग्रन्थ जो अप्रकाशित तथा "हिन्दी प्रदीप" से निकाल कर अलग छपने के लिये पड़े हुए हैं छापे जाते। १००) या १२५) रुपये कहा से आते कि यह पुस्तक प्रकाशित की जाय इससे हिन्दी साहित्यसम्मेलन ने अपने निज व्यय से इसका दूसरा संस्करण निकाला और इसका मूल्य जो ॥) था ।=) रक्खा। हिन्दी के लिये दैव सानुकूल हो रहा है जिसका फल यह हुआ कि उसी लगाव में उसकी सानुकूलता की दृष्टि इस ओर भी फिरी और "हिन्दी-साहित्य सम्मेलन" तो इसे पहिले ही से अपनाये हुये था, "बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी" ने भी अपने यहा इसे स्थान दिया और इसके तीसरे संस्करण के निकालने की आवश्यकता हुई। आज कल महंगी सब ही ओर अपना पैर फैलाये हुए है, विशेष कर प्रेस की चीजों पर तो अपना पूरा ही हाथ जमाये हुये है। कागज, स्याही आदि दूने चौगुने भाव तक चढ गये हैं। दूसरे जब इसकी कदर बढ़ी है तो उसी के अनुसार इसकी हैसियत भी बढाना उचित हुआ, इससे इसमें ग्रन्थकर्त्ता स्वर्गीय पण्डित बालकृष्णजी भट्ट की संक्षिप्त जीवनी और और अन्त में विश्वविद्यालय तथा सम्मेलन के परीक्षार्थियों के सुभीते के लिये कठिन शब्दों के सरल अर्थ, व्युत्पत्ति, तथा जहा जहा जो जो अलंकार हैं इत्यादि पर संक्षेप टिप्पणिया भी दी गई हैं, इससे इसका मूल्य ॥) रक्खा गया है।

भट्टजी की जीवनी तथा पुस्तक के अन्त में जो टिप्पणिया दी गई हैं वह उन्हीं के सुयोग्य पुत्र प० जनार्दनजी भट्ट एम० ए० की रची हुई है। यदि आवश्यकता हुई और परीक्षार्थीगण इसके द्वारा अपना कुछ लाभ समझेंगे तो इस पुस्तक पर

एक बृहत् नोट उन्हीं से लिखाकर प्रकाशित किया जायगा तथा भट्टजी के लेखों का संग्रह जो अब तक अप्रकाशित है, जिसके पढ़ने के लिये हिन्दीप्रेमीजन लौ लगाये हुये हैं "साहित्य सुमन" तथा "नैतिक सुमन" के नाम से शीघ्र ही एक मास के भीतर में प्रकाशित किया जायगा। आशा है कि इसे भी सम्मेलन तथा हिन्दू विश्वविद्यालय आदि संस्थाएँ इस योग्य समझेंगी कि इसे अपने यहा स्थान दें।

प्रकाशक।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट

की

संक्षिप्त जीवनी ।

स्वर्गीय भट्ट जी के पूर्व पुरुष मालवा प्रांत में उज्जयिनी या अवन्ती के पास शिप्रा नदी के तट पर के रहने वाले मालवीय (श्रीगौड़) ब्राह्मण थे। मुसलमानी राज्य के उथल पथल होने पर मालवा छोड़ कर ये लोग कालपी के पास बेतवा नदी के किनारे जिटकरी गांव में आ बसे। भट्ट जी के प्रपितामह श्याम जी भट्ट एक चतुर और विद्वान पुरुष थे। वे राजा साहब कुलपहाड़ के यहां एक उच्च पद पर नौकर थे। उनके पांच पुत्र हुये जिनमें से सब से छोटे पं० विहारीलाल पर उनका अधिक स्नेह था। अपने पिता पं० श्याम जी भट्ट के देहान्त के बाद ये प्रयाग में आकर बसे। तभी से ये प्रयाग में रहने लगे। पं० विहारीलाल जी के बेणी प्रसाद और जानकीप्रसाद दो पुत्र हुये। पं० बेणीप्रसाद के भी दो पुत्र हुये। उनमें से पं० बाल कृष्ण भट्ट ज्येष्ठ और पं० बालमुकुन्द भट्ट कनिष्ठ पुत्र हैं।

हमारे चरितनायक पं० बालकृष्ण जी भट्ट का जन्म विक्रमी संवत् १९०१ आषाढ़ कृष्ण द्वितिया रविवार ता० ३ जून सन् १८४४ को और मृत्यु ७० साल की उम्र में संवत् १९७१ श्रावण कृष्ण १३ सोमवार ता० २० जूलाई सन् १९१४

ई० को हुई। इनकी मा कुछ थोडा पढ़ी लिखी थी। जिनकी कृपा से प्रारम्भ ही से विद्या तथा सत्सङ्ग का इनको व्यसन लग गया। बहुत से खेल और बुरे बुरे व्यसन की ओर जिनमें पड़कर बालक प्राय नष्ट हो जाते हैं इनकी माता की कृपा से इनका ध्यान ही न गया। पिता केवल इनके जन्ममात्र के हेतु हुये। लालन पालन का सब सुख इन्हें ननिहाल में मिला। ननिहाल वाले संस्कृत के अच्छे विद्वान थे अतएव आप भी १२ वर्ष की उम्र तक संस्कृत ही पढते रहे और इस समय तक में आपको एक काण्ड अमरकोष और तद्धितान्त कौमुदी कण्ठ हो गई थी। सन् ५७ के गदर के बाद देश में अङ्गरेजी राज्य का दबदबा होने से अङ्गरेजी भाषा का मान बढ़ने लगा। इसी समय इनके पिता और चाचा ने चाहा कि पठन पाठन ऐसे कुकर्म से हटकर यह बालक दूकानदारी के काम में दत्त चित्त होकर व्यापारकुशल हो परन्तु माता की प्रेरणा से जिनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि मेरा पहला लड़का अच्छा विद्वान हो उस ओर से चित्त हटा ये पठन पाठन ही में लगे रहे। उनकी इस बात के न मानने ही के कारण आप घरवालों के कोप के भाजन हुये और पैत्रिक सम्पत्ति से पूर्णतया इनको हाथ धोना पड़ा। बुद्धिमती तथा दूरदर्शिनी माता ने उस समय अङ्गरेजी पढ़ने से बहुतों की बुद्धि तथा धन में उन्नति देख उन्हें अङ्गरेजी पढाने को सुझाया। अस्तु उदारहृदय माता की आज्ञा मान ये स्थानीय मिशन स्कूल में भरती हो गये और घर पर संस्कृत भी पढते रहे। तीव्र बुद्धि होने से ये ईसाइयों के मुकाबिले में भी बाईबिल की परीक्षा में कई बार अव्वल इनाम के अधिकारी हुये। पादरी लोग विशेष कर डेविड नाम का एक पादरी इनको बहुत ही मानता था।

माय स्कूल से छात्रवृत्ति और पढ़ने की पुस्तकें इनको मिला करतीं। पर ये बराबर तिलक लगाकर जाते जिसे ईसाई लोग बुरी दृष्टि से देखते इसपर वादविवाद भी होता। इसी स्कूल में ये Entrance तक बराबर पढ़ते रहे। उस समय Entrance की परीक्षा यहा न होकर काशी ही में होती थी। यहा से इने गिने कुछ विद्यार्थी इस परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये काशी गये। पर द्वितीय भाषा (Second Language) सिवाय इनके सबों की उर्दू या फार्सी थी। सब विषय की परीक्षा हो गई, उर्दू या फारसी का परचा जो औरों को करने के लिये दिया गया वही परचा इनके पास भी आया। आपने कहा "मैं अपनी द्वितीय भाषा पहिले से सस्कृत लिखा चुका हूँ मुझे सस्कृत में करने के लिए परचा मिलना चाहिये"। उत्तर मिला "केवल तुम्हारे लिए एक खास प्रबन्ध नहीं किया जा सकता"। लाचार उस साल ये रह गये दूसरे साल भी इसी प्रकार की गड़बड़ी के कारण Entrance न पास कर सके। तब पादरी डेविड के कहने से ये इसी स्कूल में आप अध्यापक हो गये। पर जैसा ऊपर कहा गया है कुछ धार्मिक विवाद होने के कारण अपनी स्वतन्त्रता में विक्षेप पड़ते देख इन्हें कुछ दिनों के बाद यह नौकरी छोड़नी पड़ी। स्कूल छोड़ कर ये पुन सस्कृत का अध्ययन करने लगे। व्याकरण और विशेष कर साहित्य का इन्होंने खूब मनन किया। इसी समय माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के चचा पण्डितवर गदाधर जी मालवीय से जो मिर्जापुर के मिशन स्कूल के हेड पण्डित थे आपका बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। उक्त पण्डित जी सस्कृत के हरएक विषय के विशेष करके साहित्य और व्याकरण के प्रगाढ़ पण्डित थे।

भट्ट जी में संस्कृत साहित्य का जो प्रेम था वह सब पण्डित गदाधर जी की कृपा का फल था। सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता भी विशेष कर इन्हीं पण्डित जी के सत्सङ्ग से इन्हें प्राप्त हुई। इनके पिता वा चाचा बड़े व्यवसायी थे जिससे लक्ष्मी के तो ये अत्यन्त कृपापात्र थे, पर साथ ही सरस्वती देवी के कट्टर शत्रु थे और इसीलिए तथा इनकी सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता देख ये बहुत ही गये बीते हुओं में समझे जाने लगे। समाज और विशेषकर घरवाले इन्हें "किरिस्तान" "विधर्मी" आदि शब्दों से अपमान करने लगे। अभाग्यवश घिनौनी हिन्दू प्रथा के अनुसार इनका विवाह बहुत ही कम उम्र में हो गया था। मसल है "पर बीती कहें या अपनी बीती" तो ये अपनी ही बीती बातों के कारण बाल विवाह के कट्टर शत्रु थे। "हिन्दी प्रदीप" को कोई भी अङ्क ऐसा न मिलेगा जिसमें इस विषय पर जोर के साथ टीका टिप्पणी न की गई हो। बाल विवाह के विषय में आप एक जगह लिखते हैं —

"धर्मशास्त्र के किसी टकसाली ग्रन्थ में 'बाल विवाह धर्म नहीं लिखा है, प्रत्युत महा अधर्म और अन्याय अलबत्ता निश्चय किया गया है। कन्या को अलबत्ता योग्य वर के साथ विवाह देना कहा गया है, सो तभी जब वह विवाह के योग्य हो और पुत्र का विवाह करना पिता का धर्म कहीं नहीं कहा गया, किन्तु उचित गुण और विद्या उपार्जन के उपरान्त अपने मन से यदि उसकी रुचि हो तो वह विवाह करके गृहस्थी के बन्धन में पड़े नहीं तो स्वच्छन्द रहकर वह लोक परलोक के बड़े बड़े कामों में तत्पर हो।"

वास्तव में यह कुरीति समाज में इतने जोर से प्रचलित है कि बड़े बड़े देश की उन्नति का बीड़ा उठानेवाले Public में तो

बड़े ज़ोर के साथ इसका विरोध करते हैं पर घर में अत्यन्त स्वार्थ में मग्न हो इस कुरीति के पोषक हैं। घर में यदि कोई लडकी या लडका है तो बस व्याह देना ही सिद्ध, योग्य वर या कन्या है या नहीं इसका कुछ विचार नहीं, मानो उसे व्याह जीवन के एक बड़े भारी कार्य से मुक्त हो जाना है। घर में एक कोई बड़ी भारी गमी हो गई है मुर्दा पडा हुआ है, पर नहीं, जबतक कि व्याह से छुट्टी न पा लें रोने, धोने, रज, गम का काम मुलतवी रक्खेंगे। शोक! जो विवाह का प्रश्न मनुष्य के जीवन में एक बडा भारी प्रश्न है, जिसपर जीवन का बनना या बिगडना निर्भर है उसी प्रथा को हमारे हिन्दू भाई केवल अपने स्वार्थ के लिये किस बुरी तरह से बिगाडे हुये हैं।

बहुत थोडी अवस्था में व्याह हो जाने तथा जल्दी ही दो तीन लडके हो जाने से और उसपर भी कुछ विशेष आय आपकी न होने से घरवालों ने इनकी स्त्री और लडकों को दुख देना और स्वयं उनका भी अपमान करना शुरू किया। इससे इन्हें लाचार हो कर पैत्रिक घर छोडना पडा। इनको इस बात का जन्म भर अत्यन्त दुःख था कि घर वालों ने व्याह कर इन को जकड तो दिया पर उसके बाद फिर इनकी कुछ सुध न ली, प्रत्युत इन पर बडे बड़े अत्याचार बरपा किये। जिस समय ये पैत्रिक घर से अलग हुए सिवा दो एक लोटे और निज के तथा बाल बच्चों के कपडे आदि के और कुछ भी इन के पास न था। येनकेन किसी तरह ये गृहस्थी चलाने लगे। भाग्यवश इन्हें इनकी सहधर्मिणी इनके दुख सुख में सच्ची साथ देने वाली मिली थीं। ये और इनकी पत्नी दोनों कई वर्ष तक काफी आमदनी न होने से एक ही जून खा कर रहते थे पर अपने पुत्रों के भरण पोषण और शिक्षा में कसर न पडने

भट्ट जी में संस्कृत साहित्य का जो प्रेम था वह सब पण्डित गदाधर जी की कृपा का फल था। सामाजिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता भी विशेष कर इन्हीं पण्डित जी के सत्सङ्ग से इन्हें प्राप्त हुई। इनके पिता वा चाचा बड़े व्यवसायी थे जिससे लक्ष्मी के तो ये अत्यन्त कृपापात्र थे, पर साथ ही सरस्वती देवी के कट्टर शत्रु थे और इसीलिए तथा इनकी सामाजिक तथा धार्मिक स्वतन्त्रता देख ये बहुत ही गये बीते हुओं में समझे जाने लगे। समाज और विशेषकर घरवाले इन्हें "किरिस्तान" "विधर्मी" आदि शब्दों से अपमान करने लगे। अभाग्यवश घिनौनी हिन्दू प्रथा के अनुसार इनका विवाह बहुत ही कम उम्र में हो गया था। मसल है "पर बीती कहैं या अपनी बीती" तो ये अपनी ही बीती बातों के कारण बाल विवाह के कट्टर शत्रु थे। "हिन्दी प्रदीप" को कोई भी अङ्क ऐसा न मिलेगा जिसमें इस विषय पर जोर के साथ टीका टिप्पणी न की गई हो। बाल विवाह के विषय में आप एक जगह लिखते हैं —

"धर्मशास्त्र के किसी टकसाली ग्रन्थ में बाल विवाह धर्म नहीं लिखा है, प्रत्युत महा अधर्म और अन्याय अलबत्ता निश्चय किया गया है। कन्या को अलबत्ता योग्य वर के साथ विवाह देना कहा गया है, सो तभी जब वह विवाह के योग्य हो और पुत्र का विवाह करना पिता का धर्म कहीं नहीं कहा गया, किन्तु उचित गुण और विद्या उपार्जन के उपरान्त अपने मन से यदि उसकी रुचि हो तो वह विवाह करके गृहस्थी के बन्धन में पड़े नहीं तो स्वच्छन्द रहकर वह लोक परलोक के बड़े बड़े कामों में तत्पर हो।"

वास्तव में यह कुरीति समाज में इतने जोर से प्रचलित है कि बड़े बड़े देश की उन्नति का बीड़ा उठानेवाले Public में तो

बड़े ज़ोर के साथ इसका विरोध करते हैं पर घर में अत्यन्त स्वार्थ में मग्न हो इस कुरीति के पोषक हैं। घर में यदि कोई लडकी या लडका है तो बस ब्याह देना ही सिद्ध, योग्य वर या कन्या है या नहीं इसका कुछ विचार नहीं, मानो उसे ब्याह जीवन के एक बडे भारी कार्य से मुक्त हो जाना है। घर में एक कोई बड़ी भारी गमी हो गई है मुर्दा पडा हुआ है, पर नहीं, जबतक कि ब्याह से छुट्टी न पा लें रोने, धोने, रंज, गम का काम मुलतवी रक्खेंगे। शोक! जो विवाह का प्रश्न मनुष्य के जीवन में एक बडा भारी प्रश्न है, जिसपर जीवन का बनना या बिगडना निर्भर है उसी प्रथा को हमारे हिन्दू भाई केवल अपने स्वार्थ के लिये किस बुरी तरह से बिगाड़े हुये हैं।

बहुत थोडी अवस्था में ब्याह हो जाने तथा जल्दी ही दो तीन लडके हो जाने से और उसपर भी कुछ विशेष आय आपकी न होने से घरवालों ने इनकी स्त्री और लडकों को दुख देना और स्वय उनका भी अपमान करना शुरू किया। इससे इन्हें लाचार हो कर पैत्रिक घर छोडना पडा। इनको इस बात का जन्म भर अत्यन्त दु ख था कि घर वालों ने ब्याह कर इन को जकड तो दिया पर उसके बाद फिर इनकी कुछ सुध न ली, प्रत्युत इन पर बडे बड़े अत्याचार बरपा किये। जिस समय ये पैत्रिक घर से अलग हुए सिवा दो एक लोटे और निज के तथा बाल बच्चों के कपडे आदि के और कुछ भी इन के पास न था। येनकेन किसी तरह ये गृहस्थी चलाने लगे। भाग्यवश इन्हें इनकी सहधर्मिणी इनके दुख सुख में सच्ची साथ देने वाली मिली थीं। ये और इनकी पत्नी दोनों कई वर्ष तक काफी आमदनी न होने से एक ही जून खा कर रहते थे पर अपने पुत्रों के भरण पोषण और शिक्षा में कसर न पडने

देते थे। इधर इनके घर वाले लाखों की सम्पत्ति के मालिक बने हुये गुलछर्रे उड़ाते थे और रण्डी भड़ुओं के घर भरते थे। भट्ट जी को यावज्जीवन आर्थिक क्लेश बना रहा, ऐसा कभी भी न हुआ कि इनके पास सौ दो सौ रुपया नकद रहता।

घर से अलग हो अब इन्हें रुपये पैदा करने की फिक्र हुई। व्यापार करने की इच्छा से ये कलकत्ते चले गये और वहां से थोड़े रुपये उधार ले Stationary तथा सौदागरी माल ला कर अपने प्रेमी मित्रों में जो बड़े बड़े वकील तथा रईस थे उन्हीं में बीच बेंचते। इस तरह से हर छठे मास आपका दौरा कलकत्ते का होता और वहां से जो नई नई फैशन की चीजें होतीं उन्हें लाकर ये लोगों के बीच बेचते।

स्थानीय City Anglo Vernacular School के—जो शिवराखन स्कूल के नाम से प्रसिद्ध है—संस्थापक प० शिव राखन शुक्ल इनके सच्चे हितैषियों में से थे। आपने भट्ट जी से उस स्कूल में हेड पण्डित का काम करने के लिये कहा। अपने मित्रों के बहुत कहने सुनने पर ये इस स्कूल के Head Pandit हुये। इसमें कुछ साल काम करने के अनन्तर फिर कायस्थ पाठशाला के Head Pandit हुये और बाद को जब यह कालेज हुआ तो इसमें Sanskrit के Professor नियुक्त हुये। इन पदों पर प्राय आप २० साल तक काम करते रहे। बाद को किसी कारणवश उन्हें इस पद को छोड़ना पड़ा और कालाकाकर से निकलने वाले "सम्राट" नामक पत्र के सम्पादक हुये। लगभग छै मास तक वहां आप रहे होंगे कि बा० श्यामसुन्दर दास जी ने ना०प्र० सभा से प्रकाशित "शब्द सागर"

के सम्पादन के कार्य के लिये बुला लिया। साल भर यहा कार्य करने के बाद बाबू श्यामसुन्दर दास जी—जिनकी देख रेख में यह काम होता था—जम्मू गये तो कोष विभाग भी जम्मू गया। इससे इनको भी जम्मू जाना पड़ा। छै मास वहा रहे होंगे कि वहा की काठ की सीढ़ी से पैर फिसल जाने पर आप कूले के बल गिरे जिससे कूला उखड़ गया। वृद्ध तो आप थे ही गिरने से आप बिलकुल अशक्त हो गये थे। साल भर तक आप खाट पर पड़े रहे। बाद को ये बैसाखी के सहारे चलने फिरने लगे और कुछ मास काम करने पर वहा से लौट आये और चैत सुदी ९ सवत १९७१ रामनौमी के दिन यमुना स्नान करने गये, वहीं से उनको ज्वर आया। इसी ज्वर में ४ मास तक पड़े रहने के बाद ता० २० जुलाई को सध्या समय आपका परलोकवास हुआ।

जन्म भर आपका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा था सिवा आख के—जिसके साथ इन्होंने बहुत ही अत्याचार किया था—और सब अङ्ग आपके बहुत ही हृष्ट पुष्ट थे। प्राणायाम कर जिस समय आप उठते थे आपका चेहरा सुर्ख दम दम करता था। आख से इन्होंने बेहद काम लिया था यहा तक कि १२ या १ बजे रात तक ये लिखते व पढ़ते रह जाते थे। इसने एक आख खोलवाने से जाती रही केवल एकही आख थोड़ी थोड़ी जुगजुगा रही थी।

हिन्दी और हिन्दीप्रदीप से सम्बन्ध।

विद्यार्थी की दशा में—जब काशी में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की अमर लेखनी अमृत का संजीवन स्रोत बहा रही थी और कवि-वचन-सुधा, काशी पत्रिका, बिहार बन्धु आदि पत्र प्रका

शित हो रहे थे—आपका प्रेम हिन्दी की ओर गया और सबसे प्रथम आपका एक हास्यपूर्ण लेख "कलिराज की सभा" कवि वचन सुधा में छपने के लिए गया जिसे भारतेन्दुजी ने बहुत ही पसन्द किया। इसके अनन्तर "रेल का विकट खेल" "स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी" इत्यादि इनके कई लेख प्रकाशित हुये। उसी समय प्रयाग में कालेज के थोड़े से विद्यार्थियों ने "हिन्दी वर्द्धिनी सभा" स्थापित की। सयोगवश उसी समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र किसी कार्यवश प्रयाग आये। ऐसे समय इसी सभा का एक अधिवेशन होने वाला था। भारतेन्दु जी को लोगों ने इस सभा के इस अधिवेशन में सभापति का आसन ग्रहण करने को कहा और इसकी सूचना बाबू साहब को केवल तीन व चार घंटे पहिले दी गई। इसी समय आप मुंशी हनुमान प्रसाद वकील के मकान पर बैठे शतरंज खेल रहे थे और मनोरंजक बातें कर रहे थे बस आप इसी सभा के लिए पद्य में वक्ता रचने लगे। भारतेन्दु बाबू शतरंज अलग खेलते जाते थे, मनोरंजक बातें अलग कहते जाते थे और अपनी वक्तृता को पद्य बद्ध अलग लिखवाते जाते थे। लगभग १०० दोहे आपने रचे। यह लेक्चर सब से प्रथम "हिन्दी प्रदीप" की पहिली जिल्द के १ले से ३रे अंक में प्रकाशित हो चुका है। भारतेन्दु बाबूजी का यह पद्यबद्ध लेक्चर जिसे उन्होंने कई काम एक साथ करते हुए लिखा उनकी बुद्धि की प्रतिभा या स्फूर्ति को प्रगट करता है। बाबू साहब भट्ट जी के लेख से इतने प्रसन्न हुये थे कि यहां आकर आपसे बहुत ही प्रेम से मिले और यह आशीर्वाद सा दिया कि "हिन्दी में मेरे बाद तुम्हारी ही लेखनी चमकेगी"। सभा के इसी अधिवेशन में बाबू साहब की प्रेरणा से सभा की ओर से एक पत्र निकालना निश्चय हुआ और बाबू साहब

ही के कहने से भट्ट जी ने उसके सम्पादन का भार अपने ऊपर लिया। पत्र का नाम "हिन्दीप्रदीप" और उसका माटो

"शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट है आनन्द भरै
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणि दीप सम थिर नहिं टरै।
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरै
"हिन्दी प्रदीप" प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥"

बाबू ही साहब का रचा हुआ है। यह मासिक पत्र भाद्रपद संवत १९३४ से निकलने लगा। इस "प्रदीप" में प्राचीन कवियों के जीवन-चरित्र, श्रीमद्भागवत, वाराही संहिता, गीता और सप्तशती आदि प्राचीन पुस्तकों की समालोचनायें, प्राचीन देश, नगर, नदी, पर्वत आदि के वर्णन तथा अन्य बहुत से उत्तमोत्तम लेख प्रकाशित हुए हैं। हसी, दिल्लगी, चोज आदि के लेख तो इसमें भरे पड़े हैं। इस "प्रदीप" के पुराने अङ्कों में "परसन" नाम के एक लेखक के बहुत से लेख बहुत ही हास्य-पूर्ण होते थे। परसन जाति के कलवार थे, पर भट्टजी उसे बहुत मानते थे। उसकी मृत्यु पर भट्टजी बहुत ही दुखी हुये मानो उनका कोई आत्मीय उठ गया हो। "हिन्दी प्रदीप" के लेख नये होते थे किसी की छाया अथवा अनुवाद नहीं। भट्टजी जो कुछ लिखते थे अपने दिमाग से लिखते थे। उनमें न्याय प्रियता का गुण सब से बढ़कर था। अपनी समझ के अनुसार जो उचित और न्याय्य होता था वही आप लिखते थे। भट्टजी बहुत ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे कभी किसी सम्प्रदाय या मत के क़ायल न थे, पर हां जिस बात से देश वा जाति के उन्नत होने की बातें देखते वही उनका मत हो जाता और उसी को धर्म समझते। यही बातें इनके "हिन्दी प्रदीप" के लेखों से पाई जाती है।

"हिन्दी प्रदीप" ही भट्टजी की जीवनी का सर्वस्व है वही उनके चरित्र का उज्ज्वल चित्र अपने लेख लेख में, पृष्ठ पृष्ठ में, पाठ पंक्ति में दिखाता है। भट्टजी जिस दृष्टि से वर्तमान काल के कुत्सित मनुष्यों के दुश्चरित्रों और कुकार्यों को देखते थे उसको बेधड़क कह देते थे। उनकी भाषा उन्हीं की अपनी भाषा है। उस भाषा की व्यङ्गमयी छटा उन्हीं की सम्पत्ति है। जिस बल से निर्धनी मनुष्य भी धनशालियों का पूज्य है, भट्टजी के चरित्र बल की वह तेजस्विता, वह सत्यप्रियता, वह निष्पापता, वह धैर्यशीलता, वह मधुरभाषिता, वह विनिमय नम्रता, वह क्षमाशीलता ३३ वर्ष के हिन्दी प्रदीप में चमक रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भट्टजी सदा उन थोड़े से प्रतिभाशाली लेखकों में गिने जायगे जिन्होंने आधुनिक हिन्दी भाषा के गद्य की नींव डाली है। जिस समय भट्टजी ने हिन्दी लिखना शुरू किया उस समय दो प्रकार की हिन्दी लिखने की प्रणाली प्रचलित थी। एक के आचार्य बा० हरिश्चंद्र और दूसरे के राजा शिवप्रसाद थे। भट्टजी अपने को हरिश्चन्द्र का अनुयायी कहते थे। भट्टजी से बाबू हरिश्चन्द्र की खूब पटती थी। और समान शीलस्वभाव और हिन्दी लिखने की प्रणाली में समानता होने के कारण पण्डित प्रतापनारायण मिश्र और पण्डित राधाचरण गोस्वामी से भी भट्टजी की विशेष बनती थी। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पण्डित शिवनाथ मिश्र से भी भट्टजी की बड़ी मित्रता थी।

भट्ट जी की हिन्दी।

भट्टजी की हिन्दी में भट्टजी की छाप लगी हुई है। उनकी भाषा उन्हीं की अपनी भाषा है। भट्टजी की भाषा से एक अनोखा रस टपकता है, जो अन्य लेखकों की भाषा में मिलना

मुशकिल है। भट्टजी अकारण संस्कृत के शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे और न उर्दू फारसी के शब्दों को अपनी भाषा से चुन चुन कर अलग करते थे।

भट्टजी जिस विषय पर लिखते थे उसके अनुसार भाषा भी वैसीही लिखते थे। यदि वे हास्य या ठठोल लिखते थे तो भाषा भी वैसीही हास्यमय और ठठोलसे भरी रहती थी, यदि किसी पर कटाक्ष करते थे तो भाषा भी व्यङ्गयपूर्ण रहती थी, यदि शृङ्गार रस पर लिखते थे तो भाषा भी शृङ्गारमयी रहती थी और यदि किसी गम्भीर विषय पर लिखते तो भाषा भी गम्भीर और साहित्य के गुणों से पूर्ण रहती थी। यहा पर हम भट्टजी की भाषा के कुछ उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं।

हास्य और व्यङ्ग्यपूर्ण भाषा का नमूना।—"नाक निगोड़ी भी एक बुरी बला है। इस मिट्टी के पुतले को साढ़े तीन बीता की नाक क्यों गढ़ी गई? पर उस बड़े कारीगर की नासमझी को किससे कहने जाय जिसने आदमी के तन में एक ऐसी नाजुक चीज़ लगा दी जिसके कट जाने की पग पग में डर समाई रहती है और जिसकी हिफ़ाज़त के लिए आदमी को न जानिये क्या क्या भुगतमान भुगतना पड़ता है। मुसाहब और जाहिरदारी की क़िबलागाह इस नाक का क्या कहें जिसकी रखवाली में राव से रंक तक सभी हैरान हैं। न जानिये इस नाक में क्या जादू है कि इसके बढ़ाने की कोशिश में सब रहते हैं। इसकी बढ़ी हुई वहर इज़्ज़त को घटा कर एक औसत दरजे पर लाने वाला कहीं एक भी न पाया गया। जिसने इस नाक की लाज को तिलाञ्जलि दे दिया उसकी बराबर सुखी दूसरा कोई होही नहीं सकता"।

"ईश्वर भी क्या ही ठठोल है। लोग कहेंगे इसे कुछ ख़फ़गान होगया है या इसे बीसवीं शताब्दी के फ़ैशन के अनुसार नास्तिक पन्थ का हौसला

घराया है जो उस अगम, अपार, अणोरणीयान् महतोमहीयान् के शान में भी एसी बेअदबी और ढिठाई के साथ कुफ्र का कलमा पढ़ रहा है। जो हो पर मुझे तो बहुत से अस्तव्यस्त कारख़ाने देख कुछ ऐसी ही जी में भासती है कि वह कुम्भकरण का जेठा भाई बनने की हवस बुझा रहा है, या यदि यही सब अस्तव्यस्त कारख़ाने ईश्वरता के निदर्शन हैं तो वह घर घोर नींद में सो रहा है, या जागता है तो कोई बड़ा ही ठठोल दिल्लगीबाज़ मसख़रा है, नहीं तो बेफ़िक्र और असावधान होने में तो कोई शक ही नहीं है। जिस कसौटी, परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम लोग आपस में एक दूसरे को जाचते और परखते हैं, वही परिभाषा यदि यहां भी लगा कर उसे परखें तो उनके ईश्वरता की सब कलई खुल जाय और दुनिया के हालात देख अवश्य चित्त में यही समाय कि यह कोई बड़ा ही अनोखा खेलवाड़ी है"।

शृङ्गारपूर्ण भाषा का उदाहरण —"दामिनी से दमकते हुए इसके (कुमुद के) एक एक सुडौल, सांचे के ढले, अंगों पर सुन्दरता बरस रहा था, वह अपने घने केशजालों में अलकावली की गूंथन तथा विकसित पुण्डरीक नेत्रों से वर्षा और शरद ऋतुओं का अनुहार कर रही था।

पद्मराग समान लाल और पतले होंठ, गोल ठुड्ढी, ऊंचा चौड़ा माथा, कुन्द की कली से दांत, सीधी और बराबर उतार चढ़ावदार सुग्गा का ठोंठ सी नासिका, गोल कपोल, कटीली और रसीली आखें, रेशम के लच्छे से सिर के बाल, सब मिल इसके चेहरे पर एक अनोखी छवि बरसा रहे थे"

"सौ अजान एक सुजान"

अब एक उदाहरण गम्भीर और उच्चभाव का लीजिए —

"साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है। किसी देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्शरूप है। जो जाति जिस भाव से परिपूर्ण या परिप्लुत रहता है वह सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रगट हो सकते हैं। मनुष्य का मन जब शोक

संकुल, क्रोध से उदास या किसी प्रकार की चिन्ता से दोचित्ता रहता है तब उसकी मुखच्छवि तमसाच्छन्न, उदासीन और मलिन रहती है, उस समय उसके कण्ठ से जो ध्वनि निकलती है वह भी या तो फूटी ढोल समान बसुरी, बेताल, बलय या करुणापूर्ण, गद्गद और विकृतस्वरसंयुक्त होती है। वही जब चित्त आनन्द की लहरों से उद्वेलित हो नृत्य करता है और सुख की परम्परा में मग्न रहता है उस समय मुख विकसित कमल सा, प्रफुल्लित नेत्र मानो हसता सा, और अंग अंग चुस्ती और चालाकी से फिरहरी से फरका करते हैं, कण्ठध्वनि भी तब वसन्तमदमत्त कोकिला के कलरव से भी अधिक मीठी और सोहावनी मन को भाती है। मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुल्लंघनीय प्राकृतिक नियम का देश के साहित्य भी अनुसरण करते हैं। जिनमें कभी को क्रोधपूर्ण भयङ्कर गर्जन, कभी को प्रेम का उच्छ्वास, कभी को शोक और परितापजनित हृदयविदारी करुणानिस्वन, कभी को वीरतागर्व से बाहुबल के दर्प में भरा हुआ सिंहनाद, कभी को भक्ति के उन्मेष से चित्त का द्रवता का परिणाम अश्रुपात आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक भावों का उद्गार देखा जाता है। इसलिए साहित्य यदि जनसमूह (Nation) के चित्त का चित्रपट कहा जाय तो संगत है"।

इतने उदाहरणों से पाठकों को भट्टजी की भाषा के रसास्वादन का नमूना मिल गया होगा।

यह प्रस्तुत ग्रन्थ भट्टजी की लेखनी का एक बहुत अच्छा नमूना है। इस प्रबन्ध कल्पना में उपन्यास की कोई विशेष बातें नहीं हैं। किस्सापन या बन्दिश इसकी बहुत टकसाली नहीं है। इस पुस्तक की मुख्य विशेषता यह है कि संस्कृत के बाण और दण्डी के समान उपमा आदि अलङ्कारों से भरी हुई लच्छेदार भाषा का लालित्य, तथा प्राकृतिक वर्णन इसमें भरे पड़े हैं। और इसमें के पात्रों का चरित्र चित्रण जैसा कि समाज में रह कर भट्टजी ने देखा या अनुभव

किया है वैसाही उन्होंने इस उपन्यास में रच कर दिखला दिया है। इस उपन्यास में नन्दू तथा और दो एक पात्र के चरित्र बिलकुल ही वैसे वर्णन किये गये हैं जैसा कि भट्टजी ने दो एक खास मनुष्यों में पाया था, पर यह इनकी लेखनी की खूबसूरती है कि चरित्र उनका ऐसे ढग से वर्णन किया गया है कि यह नहीं प्रगट हो सकता कि यह किसी खास मनुष्य के चरित्र का चित्र है। इस उपन्यास के चन्दू और पचानन के चरित्र में कुछ भट्टजी के चरित्र की झलक दिख लाई पड़ती है।

भट्टजी के विचित्र चरित्र में बहुत सी बातें उल्लेखयोग्य हैं पर यहा स्थानाभाव से लिखने में हम असमर्थ हैं। यदि कभी उनके प्रेमियों की इच्छा हुई तो विस्तारपूर्वक उनके चरित्र तथा लेखनी की समालोचना सहित एक विस्तृत जीवनी लिखकर पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे। अन्त में उनके परम मित्र पण्डित श्रीधर पाठक रचित एक छप्पय लिखकर इनके चरित्र को समाप्त करते हैं।

जीवनं तव अति धन्य सबहि विधि अहो पूज्यवर!
अनुदिन अनुकरनीय चरित, पावन प्रशस्यतर।
धनि स्वदेश सुचि प्रेम, नेम प्रिय प्रानहु सों पर
सात्विक शुद्ध विचारि सतत भारतोद्धार रर।
धनि "हिन्दी दीप" प्रकासि जग मूरखता तम त्रास हर
तव पुन्य नाम प्रिय भट्ट श्रीबालकृष्ण जग में अमर!

सौ अजान और एक सुजान।

उपन्यास।

पहला प्रस्ताव।

खोटे को संग साथ-हे मन तजो अङ्गार ज्यों।
ताता जारै हाँथ-शीतल हू कारो करै।

बरसात का अन्त है। दुर्व्यसनी के धन समान मेघ आकाश में सिमिट सिमिट लोप होने लगे हैं। शरत् का आरम्भ हो गया। शीत अपना सामान धीरे २ इकट्ठा करने लगी। कुआर का महीना है। उंजाली रात है। ग्यारह बजे का समय है। सन्नाटा छाया हुआ है मानो-प्रकृति देवी दिन भर की दौड़ धूप के उपरान्त थकी थकाई विश्राम के लिये छुट्टी लिया चाहती है। चन्द्रमा सोलहो कला से पूर्ण होने में कुछ ऐसा ही नाममात्र का अन्तर रखता हुआ अपनी प्रेयसी निशा की मुखच्छवि पर निहाल हो मानो हँस सा रहा है, जिसकी सब ओर छिटकी हुई चांदनी सम विषम भू भाग को एक आकार दरसाती हुई चक्रवर्ती राजा की आज्ञा समान सर्वत्र व्याप रही है, मानो वितान रूप नीले आकाश शामियाने के नीचे सुफेद फर्श बिछा दिया गया हो। मालूम होता है शरत् की सहायता पाय धरती आकाश के साथ होड़

लगाये हुये है। यहां निर्मल आकाश में मोती से चमकते हुये तारे अपने स्वामी निशानाथ के प्रसन्न करने को निशावधू के लिये उपहार बन रहे हैं; यहा कन्या के सूर्य के प्रचण्ड आतप में कीचड़ पानी सूख जाने से स्वच्छ हो, छिटकी हुई चांदनी के मिस हंसती सी धरती, फूले हुये कल्हार, गुलनार, कुई, कुन्द आदि भांति २ के फूलों का गहना सजे, उसी निशा नई दुलहिन को मुंह देखाई देने को प्रस्तुत है। यहा एक चन्द्रमा है यहां ठौर २ नवयुवतियों के अनेक चांदसे मुखड़े की चांदनी कामियों के मनमें मनसिज का विकाश कर रही है। ऐसे समय अरबी घोडे पर सवार एक आदमी देख पडा, भेष इसका सिपाहियाना था, उमर में यद्यपि ५० के ऊपर ढाक गया था पर डीलडौल से ४० के भीतर मालूम होता था। बाल इसके दो एक कहीं २ पर पक गये थे सही किंतु उतने से यह किसी को नहीं बोध होता था कि यह ढलमार्ई से ढुलक चला है। नई उमर का जोश, साहस, हिम्मत और दिलेरी में यह चढती उमर वाले जवानों के भी आगे बढा था, और यही सब बातें मानों साखी भर रही थीं, कि कचलपटी और छिछोरपन से यह बहुत दूर हटा हुआ है। पढ़ा लिखा यह कुछ न था, पर, जैसी कुछ मुस्तैदी इस में देखी जाती थी उससे स्वाभिमान इसके चेहरे से झलक रही थी। चौडी छाती और बदन की मजबूती से यह हठी मालूम होता था, और डील का न बहुत नाटा न बहुत लम्बा था। कुछ ऊंघता अलसाना सा कागज का एक पुलिन्दा हाथ में लिये लम्बे चौडे पक्के मकान के फाटक पर आकर यह खटखटाने लगा। दासी ने आय किवाड खोल कहा "बाबू सोवत हैं।" इसने कहा "बड़ा जरूरी कागज है सोकर

उठैं तो यह पुलिन्दा उन्हें दे देना"। पुलिन्दा दासी के हाँथ में पकड़ाय आप चल दिया। दासी ने किवाड़ बन्द कर लिया और भीतर चली गई।

दूसरा प्रस्ताव।

नर को अरु नलनीर को गति एकै कर जोय।
जे तो नीचो ह्वै चलै ते तो ऊचो होय॥

हिन्दुस्तान में अवध का प्रान्त भी सदा से प्रसिद्ध होता आया है। पृथ्वी का यह सम भूभाग अनेक छोटी बड़ी नदियों से सिंचा हुआ उपज और पैदावारी में और प्रान्तों की अपेक्षा आगे बढ़ा हुआ है। यद्यपि बंगाल, विहार, तिरहुत आदि कई एक और सूबे भी जलप्राय देश होने से अधिक उपजाऊ हैं किन्तु वैसे पुष्ट धान्य जैसे अवध में उपजते हैं और प्रान्तों में कहां! उन २ प्रान्तों की उपज शारदीय अर्थात् कुआरी और अगहनी मात्र है, धरती के अत्यन्त निर्बल और अधिक जलमय होने से वासन्ती अर्थात् चैती फसल यहां बिलकुल या बहुत कम होती है, और अगहनी में भी ज्वार बाजरा आदि कई एक प्रकार के अन्न की खेती का तो नाम भी नहीं है। और ठौर जब कि जेठ वैशाख की तपन और लूह में झुलस कर कहीं हरियाली का लेश भी नहीं रहने पाता यहां तब भी हरित तृण आच्छादित पृथ्वी मरकतमयीसी प्रतीत होती है। अवध इक्ष्वाकु और रामचन्द्र के समय से वीर बांकुरे क्षत्रियों का उत्पत्ति स्थान प्रसिद्ध है। सर्कारी फौज में अब भी बैसवारे सिपाहियों का दर्जा औवल समझा जाता है। पंजाब

थी, जाहिरदारी को यह दिल से नापसन्द करता था। जिस किसी को आमद से जियादह खर्च करते देखता उसे वह निरा बेईमान और दिवालिया मानता था और न कभी ऐसों का अपने किसी काम में विश्वास करता था।

इससे यह मत समझो कि यह महाकंजूस मक्खीचूस था, काम पड़ने पर यह बेदरेग लाखों लुटा देता था और बेजा एक पैसा भी उठ गया हो तो उसके लिये दिनभर पछताता था। जैसा कहा है।

यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नां
समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम्।
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्त
स्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः।

कुराह में जाते हुये एक कौडी की बचत को जो हजार मुद्रा समान समझता है वह राजसिंह उचित समय से हजारों खर्च कर डाले तो भी लक्ष्मी उसे नहीं त्यागती।

दिन रात सदा एकही काम में लगे रहना इसे बहुत बुरा लगता था। सवेरे से सांझ तक खाली तेल और पानी से देह चिकनाते हुये फेशन और नजाकत के पीछे उलझा बन केवल अपने आराम और भोगविलास की फिकिर के सिवाय और कुछ न करना इसे बिलकुल नापसन्द था। न हरदम खाली सुमिरनी फेरना ही उसे भला लगता था। न आठो पहर अर्थपिशाच बन केवल रुपयाही रुपया अपने जीवन का साध्य मान बैठा था। बरन समय से धर्म, अर्थ, काम तीनों

को पारी पारी सेवता था। व्यासदेव के इस उपदेश को अपने लिये इसने शिक्षागुरु मान रक्खा था-"धर्मार्थकाम , सममेव सेव्यो यस्त्वेकसेव्यो स नरो जघन्य "-बुद्धिमान् और सभाच तुर ऐसा था कि ज़रा से इशारे में बात के मर्म को पकड़ लेता था। केवल एकही में नितान्त आशक्ति न रख धर्म, अर्थ, काम तीनों में एकसी निपुणता रखने से कभी किसी चालाक के ज़ुल में यह नहीं आता था-ससार के सब काम करता था, पर जितेन्द्री ऐसा था कि कच्ची तबियत वालों की भाति लिप्त किसी में न होता था।

श्रुत्वा दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः
यो न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रिय

व्योपार में इसकी बुद्धि की स्फूर्ति उस समय के रोज गारियों में एक उदाहरण हो गई थी, नगर २ इसकी कोठी आढत और दूकानें इतनी अधिक थीं कि उनका इन्तिजाम इसी की अथाह बुद्धि का काम था। धर्म में निष्ठा, ब्राह्मण में भक्ति, शक्ति रहते भी क्षमा इत्यादि ऐसे लोकोत्तर गुण इसमें थे कि उसकी उपमा किसी दूसरे पुरुष में ढूंढ़ने से भी मिलना दुर्घट है। अस्तु लड़के इसके कई हुये किन्तु बहुत कुछ उपाय के उपरान्त केवल एक ही जीता बचा। पिता के इसमें एक भी गुण न हुये। इसकी अत्यन्त सिधाई और सादापन देख लोग इसे मोन्दूदास कहते थे, पर नाम इसका रूपचन्द था। आशा होती थी कदाचित् अपनी उमर पर आने से रूप चन्द भी पिता के समान गुणागर होते, किन्तु ईश्वर का कर्तब कुछ कहा नहीं जा सकता, २५ वर्ष की थोड़ीही उमर में दो पुत्र,

एक कन्या छोड यह सुरधाम को सिधार गया। सेठ हीराचं को यद्यपि इसका बड़ा सदमा पहुंचा, किन्तु उस दुःख अपने धैर्यगुण से दबाय उन दो पोतोंही को निज पुत्र सम पालन पोषण और पढ़ाने लिखाने लगा, और इतनी धन सर्म्प पाकर जैसा विनीत भाव और नम्रता अपने में थी वैसीही लड़कों में भी हो जाने का प्रयत्न करने लगा।

तीसरा प्रस्ताव।

गुणै हि सर्वत्र पद निधीयते।

उसी नगर में एक महापुरुष विद्वान् रहते थे। दूर २ देश के छात्र और विद्यार्थी इनके स्थान पर पढनेके लिये टिके रहते थे। नाम इनका शिरोमणि मिश्र था, गुण में भी ये वैसे ही विद्वन्मण्डलीमण्डनशिरोमणिके समान थे। अध्यापकी के काम में दूर २ तक कालादारी के नाम से प्रसिद्ध थे, अर्थात् काला अक्षरमात्र शास्त्र का कैसा ही दुरूह और कठिन कोई ग्रन्थ होता उसे ये पढ़ा देते थे। अनुपपन्न गरीब विद्यार्थियों को जिन्हें यह परिश्रमी पर सर्वथा असमर्थ देखते थे यथाशक्ति उनके गुज़रान के लायक छात्रवृत्ति भी देते थे। सेठ जी इनको बहुत मानते थे, इस लिये कितनों को तो शिरोमणिजी अपने पास से देते थे और कितनों को सेठ से दिलाते। सेठ इनका बडा भक्त था और इन्हें मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देवता समझ एक बार दिन रात भर में इनका दर्शन अवश्य आय कर जाता था। मिश्र जी जैसे श्रुताध्ययनसम्पन्न वैसेही सद्वृत्त और सदाचारवान् थे। "न केवलया विद्यया तपसा वापि पात्रता" सो

इनमें न केवल विद्या ही किन्तु तपस्या भी पूरी थी। स्वभाव के अत्यन्त गम्भीर, देखने में साक्षात् गणेश की मूर्त्ति मालूम होते थे। इनका चौड़ा लिलार और दमकती हुई मुख की द्युति दामिनि की दमक के समान देखने वाले के नेत्र को मानो चकाचौन्धी सी उपजाती थी। इनकी सत्पात्रता का कहना ही क्या। याज्ञवल्क्य लिखते हैं.—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यति
कुलान्युद्धरते तस्य दश पूर्वाणि दशापराणि

जिसका खाया हुआ अन्न पढने पढाने की मेहनत से पचता है वह अपने अगले पिछले दस २ पुरखों को तार देता है। सो अध्यापकी में तो ये यहा तक परिश्रम करते थे कि चार बजे के तड़के से आठ बजे रात तक निरन्तर पढाया करते, केवल मध्यान्ह में तीन चार घंटे विश्राम लेते थे। सवेरे से दस बजे तक भाष्य, वेदान्त, पातञ्जल, आदि आर्ष ग्रन्थ का पाठ होता था, दूसरी जून काव्य कोष व्याकरण गणित ज्योतिष इत्यादि का। सिवाय इसके जिस जून जो कोई जो कुछ पढ़ने आता था वह उसे विमुख नहीं फेरते थे, किन्तु केवल इतना विचार अवश्य रहता था कि असत्शास्त्र या निरीश्वरवाद वाले ग्रन्थ जैसा कपिल का दर्शन पहिली जून नहीं पढाते थे प्रात काल के समय जब त्रिपुण्ड और रूद्राक्ष धारण किये कोड़ियों विद्यार्थी अपना २ आसन बिछाय सन्ध्या लेने को इनकी गद्दी के चारो ओर घेर कर बैठ जाते थे उस समय यह मालूम होता था मानो ऋषि मण्डली के बीच पद्मासन पर ब्रह्मा विराजमान हों। उस समय देखनेवाले के चित्त में यही

भासती थी कि धन्य है इन विद्यार्थियों को जो प्रतिदिन प्र
क्षण इनके दरस परस से अपना जन्म सफल करते हैं। स
स्वती भी धन्य है जो इनके मुख कमल के संपर्क का सुखानु
करती हुई ऐसे महात्मा के प्रसन्न, गंभीर, और विमल म
मानस में राजहंसी के समान वास करती है। जहां से का
कोष, अलङ्कार, तर्क आदि अनेक विद्या निर्मल २ नदीके सम
प्रवाह रूप में बहती छात्रमण्डली का कायिक और मानसि
दोनों पाप धोये देती हैं। न केवल विद्याही के कारण इनकी
कोई प्रशंसा करते थे और इनके बडे भोतकिद हो गये
किन्तु अनेक असाधारण लोकोत्तर गुणोंसे भी। शान्ति
क्षमा के यह आधार थे, तृष्णालता-गहनें-वन के का
को मानो कुठार थे; अज्ञानतिमिर के हटाने को सहस्रांशु
हठ और दुराग्रह आदि महाक्रूरग्रह के अस्ताचल थे, उद
भाव के उदयगिरि थे; क्षमा और उपशम महाह्रद के मूल
धर्म की ध्वजा, सत्पथ के दिखलाने वाले, शील के सा
सौजन्य सुमन के कुसुमाकर थे। किं बहुना 'हीराचन्द के
पण्डित जी सर्वसही थे। उस प्रान्त के छोटे बडे सभी
सूबेदार इन्हें मानते थे और प्रतिमास असख्य धन इनकी
भेज देते थे। पण्डित जी उस धन में से केवल साधा
भोजन और मोटा झोटा कपडा पहिन लेने के सिवाय सब
सब अपने पास पढनेवाले विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति में
कर देते थे। लडका बाला इनके कोई न था पर इस
का इनको कुछ सोच न था, उन विद्यार्थियों ही को अ
पुत्र मानते थे। बरन पुत्र से अधिक प्रेम उनमें इनका
उन सबों में दूर देश का एक विद्यार्थी आकर थोडे दिन
यहां पढने लगा, किस नगर या ग्राम का रहनेवाला यह

यह कुछ मालूम नहीं; पर बोली इसकी कुछ २ माड़वाड़ियों की सी थी। जो हो इसके शील स्वभाव और बुद्धि की तीक्ष्णता से पण्डित जी इसपर यहां तक रीझ गये कि इसे अपना पट्टशिष्य मानने लगे। और सब बातों में पण्डित जी की अनुहार तो इसमें थी ही, किन्तु बोलने में पटु और बर्बर होना यह एक बात इसमें विशेष पाई गई। पण्डित जी अध्यापक बहुत अच्छे थे, किन्तु अत्यन्त शान्तशील होने के कारण शास्त्रार्थ करने में उतने प्रवीण न थे। इसमें दोनों बात होने से गुरू जी भी इसका विशेष आदर करने लगे। हीराचन्द जब पण्डित जी के दर्शनों को आता था तो उसका वाक्पाटव और पैनी बुद्धि की तेजी देख सेठ प्रसन्न हो जाते थे और इसके ये गुण हीराचन्द के मन में जगह पाते गये। नाम इसका चन्द्रशेखर था किन्तु पण्डित जी का यह अत्यन्त कृपापात्र था इससे ये इसे चन्दू कहते थे। सेठ अपने बालकों के लिये ऐसा एक आदमी खोज रहा था जो उन्हें पढ़ावे तो थोड़ा पर इधर उधर की चतुराई की बातें उन्हें सुनावे बहुत। चन्दू में यह गुण देख उसी को सेठ ने अपने दोनों पौत्रों के पढ़ाने के लिये नियत कर दिया।

चौथा प्रस्ताव।

यौवनं, धनसंपत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

धनाधिप राजराज कुबेर कासा असंख्य धन और देवराज

इन्द्र के से अनुपम ऐश्वर्य के, स्वतन्त्र अधिकारी अपने दो पौत्रों को छोड़ सेठ हीराचन्द सुरधाम सिधार गये। सेठ के प्राणधनसमान प्यारे परिडत शिरोमणि ने भी इसके वियोग की आग के दाह में आह भरते हुये अपने जीवन को झुलसाना अनुचित मान और सेठ सरीखे धर्मात्मा को वहा भी धर्मोप देश से सनाथ रखने को इसका साथ दे दिया। राजा और बहादुर आ सा सिर्फ दुलार में पुकारने का नहीं वरन् वास्तव में अपनी वेइन्तिहा विभव की निश्चय दिलानेवाली दुहरी मुहर के समान अपने दो पौत्रों का नाम सेठ ने ऋद्धिनाथ और निधिनाथ रक्खा था। उनमें ऋद्धिनाथ बडा था और निधिनाथ छोटा। करोडों का धन अपने अधिकार में पाय, अब इन दोनों के नाम की पूरी-२-सार्थकता हो गई। शील स्वभाव और आकृति में दोनों की ऐसी समता पाई जाती थी मानो ये हीराचन्द के सुकृतसागर की सीप के एकसी आभा वाले छोटे बड़े दो मोती हैं, या उसके पुण्य की दो पताकायें हैं, या यशवृद्धि करनेवाले बीजाङ्कुर न्याय के दो उदाहरण हैं, या एक ही डठरी के दो गुलाब हैं, या वसन्त ऋतु के चैत्र वैशाख दो महीने हैं। साचे कैसे ढले इन दोनों के एक २ अङ्ग और रङ्ग रूप में यहा तक तुलना थी कि दाहिने गाल पर एक तिल जैसा बडे के था ठीक वैसा ही एक तिल छोटे के गोल कपोल पर भी चन्द्रमा के गोलाकार मण्डल में अङ्क के समान शोभा दे रहा था। सामुद्रिकशास्त्र में लिखे हुये इनके अङ्ग प्रत्यङ्ग में ऐसे २ एक से लक्षणों को देख बोध होता था मानो ये दोनों जब गर्भ में थे तभी इनका शुभ अशुभ भावी परिणाम नियत कर विधना ने इन्हें पैदा किया था। न केवल इन दोनों के शरीर की सुघराहट और बनावट ही में समता थी

न शीलस्वभाव, रगढंग, बोलचाल, रहनसहन, सब इन नों का एकसा था। उमर इस समय बडे की चोदह और टे की बारह वर्ष की थी। कुछ दिनों तक ये दोनों बराबर सी क्रम पर चले गये जिस क्रम पर सेठ इन्हें रख गया था। न्दू नित्य इनके घर पढाने आता, कभी २ यही दोनों उसके र आते थे। चन्दू इन्हें पढाता तो थोडा पर इधर उधर की तुराई की बातें, जो इनकी कोमल-बुद्धि में सहज में समाय सकें और सोहावनी मालूम हो, बहुत सुनाया करता ा, और ये भी-बडे शान्त, और विनीत भाव से उसकी ात सुनते और गुरु के समान इसका यथोचित् आदर करते े। चन्दू की योग्यता और पाण्डित्य का प्रकाश हम पहिले कर आये हैं कि यह पण्डित जी का पट्टशिष्य था और उनके पढाये हुये विद्यार्थियों में सब से चढा बढ़ा था, बल्कि शिरो- मणि महाराज के सब उत्तम गुण इसमें देखे गये, अन्तर केवल इतना ही पाया गया कि, स्वभाव का यह अत्यन्त तीक्ष्ण और क्रोधी था, लल्लोपत्तो और जाहिरदारी इसे आती ही न थी, बल्कि ऐसे लोगों पर, उसे जी से घिन थी। यह उन ब्राह्मण और पण्डितों में न था कि केवल दूसरों ही के उपदेश के लिये बहुत से ग्रन्थों का बोझ लादे हों पर काम में -पतित ब्रह्मानन्द शूद्र से भी अधिक गये बीते हों। लोभ, कपट और अहभाव का कहीं सम्पर्क भी इसमें न था। स्वलाभसन्तोष, सिधाई और जीवमात्र की हितेच्छा की यह मूर्ति था।

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान्।

निरहङ्कारिण शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत्

* माने भगवत के इस श्रीमुखवाक्य आधार था उसकी चरितार्थता ऐसे ही ब्राह्मणों के विद्यमान् रहने से हो रही है। अफसोस यदि समस्त ग्रहमण्डली या उनमें से अधिकांश चन्द्र के समान उन २ सुलक्षणों से सुशोभित होते तो इस नई रोशनी के जमाने में भी इनके विरुद्ध मुह खोलने की किसी की हिम्मत न पड सकती और ये सर्वथा पतित हो ऐसी गिरी दशा में आ जाते अस्तु ये सब उत्तम गुण इसके लिये ऐगुण हो गये। साथ के पढ़ने वाले ही इसके गुण गौरव को न सह इसकी बुराई में लग गये। यह किसे प्रगट नहीं है कि आपस की नाइत्तिफाकी का बीज दूसरे की तरक्की पर जलन ने ही हिन्दुस्तान को मुद्दत से कबाड कर रक्खा है। तब जिस जाति की वह है उसकी तो यह खास एसोसियम सी होगई है। कहावत है "काऊ बाम्हन हाऊ जात देख गुर्राऊ"। सिरे की भेड़ चाल के भांति ब्राह्मण ही जो हिन्दूजाति का सिरा और हिन्दुस्तान के सब कुछ हैं इस लक्षण के हुये तो औरों की कौन कहे। चन्द्र इस बात को जान गया था कि लोग हमसे खार खाते हैं और हमारी खुचर में लगे हुये हैं फिर भी अपना कर्तव्य कार्य समझ उन दोनों बालकों को सिखाने और उन्हें ढंग पर चढ़ाने से यह विमुख न हुआ। इसने सोचा कि हीराचन्द सरीखे सत्पात्र के घराने की प्रतिष्ठा और भलमनसाहत इन्हीं दोनों के सुधरने या कुढंग होने से बनती या बिगडती है

---

* ऐसे ब्राह्मण जो स्वभाव सन्तुष्ट हैं, साधु हैं, प्राणीमात्र के हित चाहनवाले हैं, अहंकार रहित हैं, शान्त स्वभाव के हैं भगवान् कहते हैं कि उन्हे बार बार सिर से प्रणाम करता हूं।

दूसरे सेठ जी का एहसान इस पर इतना अधिक था कि उसे याद कर यद्यपि यह स्वभाव का बहुत सच्चा और खरा था तौभी इस काम से अलग न हुआ।

अब वर्ष ही दो वर्ष के उपरान्त तरुनाई की झलक इन दोनों पर आने लगी, नई नई तरंग सूझने लगीं, नई उमर का तकाज़ा शुरू हो गया, अमीरी के अल्हड़पन ने आकर अब अगह किया तो उसी तरह के सब सामान इकट्ठे होने की फिक्रि हुई। एकाएक अज्ञान तिमिर के छा जाने पर चान्दनी समान चन्दू के उपदेश को प्रकाश पाने का अवसर ही न रहा, असएव धन और राजसी वैभव पर अपना स्वतन्त्र अधिकार देख दोनों में एक साथ चढ़े हुये दर्पदाह ज्वर की दाह बुझाने को सदुपदेश शीतलोपचार इनके लिये किसी भांति कारगर न हुआ। बबुआ से बाबू साहब बनने का शौक बढ़ा, जी में नए २ उमंग का समुद्र उमड़ २ लहराने लगा। सेठ की दौलत पर गीध के समान ताक लगाये बैठे हुये मीरशिकार भांड भगतिये-दूर २ से आ जमा होने लगे, खुशामदी चुटकी बजानेवाले मुफ्तखोरोंकी बन पड़ी। चन्दू की शिक्षा के अनुसार चलने की कौन कहे उसके नामकी चर्चा भी चित्तमें दोनों को बिच्छू के डंक की भांति व्यथा उपजाने लगी। इनकी पसन्द या तबियत के खिलाफ ज़रा सा कोई कुछ कहता तो वह इनका पूरा दुशमन बन जाता था। चन्दू जब कोई अनुचित बात इनकी देखता उसी दम इन्हें टोक देता और आगे के लिये सावधान हो जाने को चिता देता था। यह इन दोनों को ज़हर लगता था और जी से यही चाहते थे कि कौनसा ऐसा शुभ दिन होगा कि इस खूसट से हमारा पिण्ड छूटेगा। जो अनन्तपुर सेठ जी सरीखे विद्यारसिक भोजदेव के

मानो नयाघतार के समय दूर २ से झुंड के झुंड नित्य नये विद्वानों के आने जाने से छोटी काशी का नमूना बना हुआ था वहीं अब भांड भगतिये, कत्थक कलावंतों के भर जाने से लखनऊ और दिल्ली की अनुहार करने लगा। इस बात का हौसिला हमारे बाबू साहब को नित २ चढ़ता ही गया कि जो अमीरी के ठाटबाट हमारे यहां हों वह अवध के बड़े २ नौवाबजादे और तालुकदारों के यहां भी देखने में न आवें। बड़े बाबू का हौसला देख छोटे बाबू साहेब क्यों पीछे हट सकते थे, इस तरह दोनों मिल खेत सींचनेवाले दोगले की भांति सेठ की चिरकाल की कमाई का संचित धन दोनों हाथ से उलच २ फेंकने लगे। इस तरह वहां अजान लोगों का दल इकट्ठा होते देख और इन दोनों के कुढङ्ग और कुचाल बढ़ती देख चन्दू सा सुजान अचानक अन्तर्धान हो गया, पर जी में इसके इस बात की चोट लगी रह गई कि हरीचन्द सरीखे सुकृती की सम्पत्ति का ऐसा बुरा परिणाम होना अत्यन्त अनुचित है।

पांचवां प्रस्ताव।

इक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार।
किते न ऐगुन जग करत नैवै चढ़तीबार।

शिशिर की दारुण की शीत से जैसे सिकुड़े हुये देहधारियों के एक २ अंग बसन्त की सुखद ऊष्मा के सचार होते ही फैलने लगते हैं, उसी तरह कुसुमबान की गरमी शरीर में पैठते ही नव युवा और युवतियों के अंग प्रत्यंग में सलोनापन भीजने लगता है। तन में, मन में, नैन में नई २ उमंगें

पहने को जरा भी किसी ने दूसरा कि निउगी बदल जाती, मिजाज बरहम हो जाता था। दुर्व्यसन के विष का बीज बोने वाले चापलूस चालाकों की बन पड़ी। एक चापलूस बोला "बाबू साहिब आप के घराने का बड़ा नाम है, आज दिन अवध के रईसों में आप का औवल दरजा है, बड़े सेठ साहब म थे सादे बनिया आदमी थे इसलिए उनको यही सोहाता था, अब आप का नाम बड़े२ तअल्लुकेदार और रईसों में है। आप की रस्म जरत और इज्जत बहुत बढ़ी है, नित्य का आना जाना ठहरा एक न एक तकरीब, जलसे और दरबार हुआ ही करते हैं, तब आप वैसा सर सामान न कीजियेगा तो किस तरह बाप दादों की इज्जत और अपने खानदान की बुजुर्गी कायम रख सकियेगा"। दूसरा बोला—"जी हां हुजूर, बहुत ठीक है सामान तो सब तरह का इकट्ठा करना ही चाहिये"। तीसरा बोला "इन सजावटों के लिए लाख पचास हजार रुपये आपके लिए क्या हकीकत है। मैं हाल में लखनऊ गया था, एन० डी० कम्पनी की दूकान पर शीशेआलात वगैरह का नया चालान आया है, मैं समझता हूं आपके कमरों की सजावट के लिए पन्द्रह बीस हजार के शीशे काफी होंगे"। बाबू साहब इन धूर्तों की चापलूसी पर फूल उठते थे। जिसने जो कुछ कहा तत्काल उसे मंजूर कर लेते थे। आठ बार नौ तेवहार लगे ही रहते थे। दिन बाग बगीचा की सैर, यार दोस्तों के मेल मुलाकात में बीतता था, रात नाच रंग और जियाफतों की धूमधाम में कटने लगी। दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना के नामी नायके सदा के लिए अनन्तपुर में बुला कर टिका लिए गये; अपने घर का सब काम काज देखना भालना तो बहुत दूर रहा बैठे बाबू साहब

के छुडी पुरजों पर दस्तखत करना भी निहायत नागवार होता था। मुनीम और गुमाश्तों की बन पडी। सब लोग अपना अपना घर करने लगे, इधर ये दोनों हाथों से दौलत को उलच उलच फॅकते थे; उधर मुनीम गुमाश्ते तथा और कारकर्त्ता जिनके भरोसे इन दोनों ने सब काम छोड रक्खा था अपना घर भरने लगे। इसी दशा में हीरा चन्द के सुकृत धन का हाल सो जगह से रसते हुये घड़े का सा हो गया जो देखने में कुछ नहीं मालूम होता, किन्तु थोडे ही अरसे में घडा छूछे का छूछा रह जाता है। सच है —

"समायाति यदा लक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुवत्
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्।"

लक्ष्मी जब आने लगती है तो नारियल के फल में पानी के समान आती है, भीतर पानी इकट्ठा रहता है बाहर किसी को नहीं पता लगता। वही जब जाती है तो हाथी के खाये कइथे के समान होता है। कइथा समूचा हाथी लीद कर देता है, पर भीतर का गूदा गायब रहता है।

छठवां प्रस्ताव।

"किमकार्यंकातराणाम्"

ग्रीष्म की ऋतु है। जेठ का महीना है। दोपहर का समय है। सब ओर सन्नाटा छा रहा है। तिग्मांशु का तीखी खरतर किरणों से समस्त ब्रह्माण्ड तचे लोहपिण्ड का अनुहार कर रहा है। क्या स्थावर, क्या जंगम यावत् पदार्थ

सब पानी ही पानी रट रहे हैं। जिसे छूओ वही अंगारे सा गरम बोध होता है, मानो त्वगिन्द्रिय शीत स्पर्श से निराश हो जल में शैत्य गुण का निर्देश करने वाले (शीत स्पर्शवत्याप) कणाद महामुनि की बुद्धि का भ्रम मान बैठी है। एक तो अत्यन्त दण्डायमान दिन उसमें ललाटन्तप चण्डांशु के प्रचण्ड आतप के ताप से सन्तप्त, शीतलच्छाया का सहारा किये हुये, यह जगम जगत् भी स्थिर भाव धारण कर मौन-अवस्था से दुःसहायो ग्रीष्म के उच्चाटन का मानो मन्त्र सा जप रहा है। जगम जगत् की इस मौन दशा में कभी कभी पुराने खडहरों पर बैठी चील-का भयङ्कर-किकियाना जो कानों को व्यथा पहुंचा रहा है सो मानो बीच बीच उस-उच्चाटन मन्त्र की सुमरनी पूरी होने का पता देता है। प्रत्येक गृहस्थों के यहां घर घर सब लोग भोजन के उपरान्त विश्राम सुख का अनुभव कर रहे हैं; नींद आ जाने पर पंखा हाथ से छूट गया है, खुर्राटे भरने लगे हैं। स्त्रियां गृहस्थी के काम काज से छुटकारा पाय दुधमुहे बालकों को खेला रही हैं। कोई कोई बालक बालिकाओं को इकट्ठे कर उनके रिझाने को कहानियां कह रही हैं। कोई कोई नवोढ़ा अपनी हमजोली सखी सहेली को गतरात्रि में अनुभूत प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना रही हैं। कोई कोई रूपगर्विता बार बार दर्पण में मुख देख देख वेश भूषा की सजावट कर रही हैं। कोई कोई बड़ी जगरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जेठ के दीर्घ दोपहर की ऊब दूर करने को सूप की फटकार से अपने पड़ोसी के विश्राम में विक्षेप डाल रही है। हवा से साथ लड़नेवाली कोई कर्कशा 'न लड़ैगी तो खाया हुआ अन्न कैसे पचैगा' यह सोच अपने पड़ोसियों पर बान से तीखे और रूखे वचन की वर्षा कर रही है। कोई सरला

सुशीला घर की पुरखिन अपनी वहू बेटियों को एकत्र कर उन्हें अच्छे अच्छे उपदेश दे रही है। कोई पढ़ी लिखी एकान्त में बैठी तुलसीकृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास कर रही है। कोई कोमलांगी अपनी प्यारी सखी को कसीदा या कारपेट सिखाती हुई परस्पर प्रेमालाप के द्वारा मध्यान्ह के निकम्मे घंटों को सफल कर रही है। खेलवाडी बालक जिन्हें इस दोपहर में भी खेलने से विश्राम नहीं है, गप्पें हाकते हुए दूसरे २ खेल का बन्दोबस्त कर रहे हैं। बगलों पर साहब लोगों के पदाघात का रसिक पंखाकुली अपने प्रभु के पादपद्म को मानों बारम्बार झुक झुक प्रणाम करता सा ऊंघ रहा है पर पखे की डोरी हाथ से नहीं छोडता सहिष्णुता और स्वामिभक्ति में दृढ सौहार्द इसी का नाम है। अस्तु, ऐसे समय रंगीन कपडा सिर पर डाले अठखेली चाल से एक नौजवान आता हुआ दूर से देख पडा। धीमे स्वर से कुछ गाता हुआ चला आ रहा था, ज्यों ज्यों पास आता गया इसकी पूरी पूरी पहिचान होती गई। पहिले इसके कि हम इसका कुछ परिचय आपको दें यह निश्चय जान रखिये कि चन्दू सरीखे बुद्धिमानों के सदुपदेश के अंकुर का बीजमार करने वाला अकालजलदोदय के समान यही मनुष्य था। यद्यपि अनन्तपुर में सेठ के घराने से इस कदर्य का पुराना सम्बन्ध था, किन्तु सेठ हीरा चन्द के जीते जी इसका केवल आना जाना मात्र था। इसके घिनौने काम और दुराचार से हीरा चन्द सदा घिन रखते थे। इस कारण जब तब इसे ऐसी फटकार बतलाते थे कि इसकी हिम्मत सेठ के घराने से अत्यन्त घिष्ट पिष्ट रखने की न होती थी। पाठकजन, यह सेठ जी के पूज्य पुरोहित के घराने का था। नाम इस का बसन्त राम था

र सब लोग इसे बसन्ता बसन्ता कहा करते थे। नाक फसडी; ठ मोटा, आख घुच्चू-सी, माथा बीच में गड्ढेदार, चेहरा गाल, रग काला मानो अंजन गिरि का एक टुकडा हो। पढना लिखना तो इसके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था। जब यह मां के गर्भ में था तभी इसके बाप ने यमपुर की राह ली। केवल नाम मात्र के ब्राह्मण, इन पुरोहितों की पढ़ते तो सृष्टि ही निराली होती है कि पुरोहिती कस से जीने वाले सौ पचास इकट्ठे किये जाय तो विरले एक दो उनमें से ऐसे निक लेंगे जो आवारगी उजड्डपन और छिछोरेपन से खाली होंगे। विद्या, गुण अथवा किसी प्रकार की योग्यता का तो जिकर ही क्या उनमें साधारण रीति की मनुष्यता हो मानो यही मुश्किल है, तब इस रांड़ा पुत्र का कहना ही क्या! इस अभाग को तो जन्म ही से कोई कुछ कहने सुनने वाला न था।

एकेनापि कुपुत्रेण कोटरस्थेन वह्निना।
दह्यते तद्वनं सर्व कुपुत्रेण कुलं यथा॥

कुपुत्रों में भी यह उस तरह का कुपूत न था कि खोडर में रक्खी आग के समान केवल अपने ही कुल का भस्म करे अपितु जहा जहा इसको थोडी भी पैठ या सचार हो गया वहा वहा इसने भरपूर अपना सा उस घरानेवालों को कर दिखाया। यह सदा इसी ताक में रहा करता था कि किस घराने में कौन २ नये कैडे हैं। उन्हें किसी न किसी तरह अपने ढङ्ग पर चढाय खातिरख्वाह गुलछर्रे उडाया करता, जब देखा अब यहा कुछ सार न रहा तो निर्गन्धोज्झित पुष्प के समान उसे त्याग भ्रमर के समान दूसरा ठौर ढूढ़ने लगता।

इस नाम से इसने न जानिये कितने कुलप्रसूत नई उमर वालों का शिकार कर अमीरशिकारी के फन में पूरा उस्ताद हो रहा था । इन बाबुओं को तो इसने ऐसा फसा रक्खा था कि इसके बिना उन्हें एक दम चैन न पड़ती, मानो दोनों बाबुओं का यह बसन्ता सर्वस हो गया था। और यह ऐसा चालाक था कि जिस ढङ्ग पर चाहता काठ के खेलौने के माफिक दोनों को झुलकाता फिरता। हम पहले लिख आये हैं कि यह पढ़ा लिखा न था तब हबशियों के से इसके मोटे मोटे होठों पर बड़े बड़े और चौड़े दांतों को देख "कचिद्दन्ता भवेन्मूर्ख" सामुद्रिक के इस लक्षण में कचित् शब्द की चरितार्थता मानो इसी के लिये रक्खी गई थी, बड़े दांत वाले कोई मूर्ख देखे गये तो यही। दूसरे इसकी कञ्जी आंख साखी दे रही थी कि कदर्य्यता इसमें, किस दर्जे तक पहुँची हुई है। पाठक, आप इस बसन्ता से भरपूर परिचय कर रखिये, अभी आप को इससे बहुत काम पड़ना है, क्योंकि हमारे इस किस्से के कई एक नायक प्रतिनायकों में चन्दू का प्रतिनायक यही होता रहेगा। चन्दू सा सुपात्र भलामानुस और बसन्ता के समान नटखट कुपात्र कहीं विरले पाओगे। हम ऊपर सूचित कर आये हैं तमाशबीनी पर कमर कसे इन बाबुओं के कारण बारवनिताओं के अधिक संघट से अनन्तपुर इस समय दिल्ली, लखनऊ का नमूना बन गया था। बसन्ता को बाबुओं का तन, मन समझ सब ही बारविलासिनी इसकी खुशामद में लगी रहती थीं। यों बाबू साहब बरायनाम काठ के उल्लू बना कर थाप दिये गये थे असिल में मानो हीरा चन्द का वली अहद यही बन बैठा था, और उसके धन का सब सुख भोगने वाला यही अपने को मानता था। ऐसे दोपहर के समय यह, बये

घर से निकला और क्या इसका मतलब था इसका रहस्य जानने को कौन न उकताता होगा किन्तु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखकों की रीति के विरुद्ध है इससे इस प्रस्ताव को यहीं समाप्त करते हैं।

सातवां प्रस्ताव।

सन्ततिः श्लाघ्यतामेति पितॄणां पुण्यकर्मभिः।

भरतपुर से ईशानकोण को दो कोस पर एक मठ था। यह मठ किसी प्राचीन देवस्थान में हो, इसका कहीं से कुछ पता नहीं लगता, क्योंकि किसी पुराने लेख, इतिहास या पुराण में इसकी कहीं चर्चा नहीं पाई गई। किन्तु साथ ही इसके यह भी कोई नहीं जानता कि कब से इस मठ की पूजा और मान आरम्भ किया गया, न यही कोई बता सकता है कि किस बड़े सिद्ध या महात्मा का यह आश्रम या तपोभूमि है। इस मठ में किसी देवी देवता की मूर्ति न थी, न उसके समीप आस पास कोई कुण्ड, देवखात, नदी, झरने आदि थे जिससे हम इसे कोई पुराना तीर्थ कह सकें। इस मठ का कुल हलका पौन कोस के गिर्द में था। चारों ओर से लहलहे सघन वृक्षों की शीतल छाया और ठौर २ लताओं से छाये हुये कुंज की रमणीयता मन को हरे लेती थी। ग्रीष्म का सन्ताप और जाड़े की कपकपी कभी यहां नाम को भी न व्यापती थी। बरसात के पानी का एक अच्छा लहरा घने वृक्षों की छाया में एक साधारण सी फुलवाड़ी मालूम होती थी। बोध होता है मानों ये सब विटप और लतायें प्रपा,

वात, शीत, आतप के निवारक इस मठ के लिये एक कुद रती छाता बन गये हैं। हम ऊपर, लिख आये हैं कि यहां कोई देव मन्दिर या किसी देवता की प्रतिमा स्थापित न था जिससे कोई चिन्ह तीर्थ होने का यहां प्रगट होता हो; किंतु तपोभूमि सदृश उस स्थान का माहात्म्य ऐसा देखा जाता था कि यहां पहुंचते ही मन में सतोगुण का भाव आप से आप उदय हो आता था। मन कैसा ही उदासीन और मलीन हो वहां जाने से प्रसन्न और प्रफुल्लित हो उठता था। मुख्य स्थान इस आश्रम का कई एक पुराने पुराने वट वृक्षों के बीच एक मढ़ी सी थी, जिसके भीतर गज भर का लम्बा चौड़ा और आध गज ऊंचा एक पक्का चबूतरा सा बना था। यात्री या जियारत करने वाले उसी चबूतरे की पान फूल मिठाई इत्यादि से पूजा करते थे। दस बीस कोस के गिर्द में यह स्थान ऐसा प्रसिद्ध था कि दूर से लोग यहां मानमनौती करने आते थे। इस चबूतरे के एक ओर एक धूनी सी थी जिसमें रातदिन गुग्गुल, लोहबान और चन्दन की लकड़ी सुलगा करती थी। लोग कहते हैं यह अग्नि यहां द्वापर के अन्त से आज तक नहीं बुझी और अर्जुन ने जब खांडव वन जलाया था तो उसका परिशिष्ट अग्नि लाके यहीं स्थापित कर दी, और प्रलय काल में जब महादेव जी के तीसरे नेत्र से अग्नि निकल कर सम्पूर्ण विश्व को भस्मसात् करेगी उसी में यह धूनी की आग भी मिलकर शिव की नेत्राग्नि को दोचन्द भड़का देगी। इस मठ के पण्डे या पुजेरी थोड़े से जटाधारी काले काले योगी या गुसाईं लोग थे। ये ही यहां प्रधान या मुखिया थे जो कुछ इस मठ में चढ़ता था वह सब इन्हीं लोगों में बट जाता था। आवारगी, उजड्डपन और असत् व्यवहार में ये गुसाईं भी और

और पड़े तथा तीर्थलियों से किसी बात में कम न थे। इस स्थान के पुरातन और पवित्र होने में कोई सन्देह नहीं, किन्तु इन अपढ़ यात्रियों का दुराचरण देख घिन होती थी और यह मठ यहां तक बदनाम हो गया था कि बहुत से भलेमानुस शिष्ट जन यहां आने या साल में जो कई मेले इस मठ के हुआ करते थे उसमें शरीक होना मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। वैशाख और जेठ दो महीने के प्रति मङ्गलवार को यहां बड़ी भीड़ होती थी, हजारों आदमी आसपास गांव और नगर के यहां आते थे। सैकड़ों दुकानें लगती थीं। सबेरे से दश बजे रात तक इस मेले का ठाठ रहता था।

हम अपने पाठकों का इसके पहले एक नये आदमी का परिचय दे चुके हैं जो दोनों बाबुओं का मानो जीवन सर्वस्व था, जिसके बिना एक क्षण इन्हें कल न पड़ती थी और बाबुओं का इसके चंगुल में देख भीड़ के भीड़ आछे छिछोरे इसकी खुशामद में लगे रहते थे। उन्हीं में इस मठ के बहुत से योगी भी थे इस लिये इस मठ में तो मानो बसन्तराम का राज सा था। जो २ अत्याचार यहां आ वह कर गुजरता था वह बुरा तो सब को लगता था, कई एक बूढ़े २ गुसाईं तो लहू का घूंट पीकर रह जाते थे, पर उन बाबुओं के मुलाहिज़ से कुछ न कहते थे। यद्यपि ऐसे २ छिछोरों के हु सग से इन दोनों बाबुओं की भी सब कलई दिन २ खुलती जाती थी और सम्मान जैसा अौवल दरजे के रईसों का मिलना चाहिये उस में भले लोगों के बीच नित्य २ कमी होती जाती था। तौभी पुराने सेठ सुकृती हीरा चन्द की पहिली बातों को याद कर सबों चुप रह जाते थे। क्या अचरज इन गुसाइयों का भी हीराचन्दजी की भलमनसाहत का ख्याल आ जाता था,

जिससे ये लोग वसन्ता तथा इन बाबुओं का अनेक तरह का उपद्रव मठ के मेलों में देख कर भी चुप रह जाते थे, जो हा प्रस्तुत का अनुसरण करते हैं।

एक बूढा ब्राह्मण—"हाय २ हाफते २ कण्ठगत प्राण आ रहा है। झूठ कहते हों तो हमारे सात पुरखा नरक में गिरें। न जानिये आज किस कुसाइत में घरसे निकले कि हाथ गरम होना कैसा एक फूटी कौड़ी से भी भेंट न हुई, भीड और हुल्लड के घिस्सघिस्सा में अग चूर चूर होगया। भला बचकर किसी तरह से बाहर निकल आये मानों लाखों भर पाया। क्या कहते हो 'तो क्यों आया'। अरे न आवें तो क्या करें। एक तो गरीब दूसरे बडा कुनबा अब भी क्या हीरा चन्द से दानी और पात्रापात्र का विवेक रखने वाले बैठे हैं जो हम ऐसों की दीनता पर पिघल उठेंगे। ईश्वर इनका सत्यानाश करे न जानिये कहा कहा के ओछे छिछोरे इकट्ठे होगये कि हमारे बाबुओं की दुढंग पर चढाय बिगाड डाला। सेठ के समय तो हम किसी के आगे हाथ पसारना कैसा, घर के बाहर कभी पाव भी नहीं रखते थे, वही अब एक तुच्छ से तुच्छ आदमियों के सामने दिन भर गिडगिडाते फिरते हैं तब भी साझ को अच्छी तरह पेट भर अन्न नहीं मिलता। आज इस मेठ का मेला समझ आये थे कि किसी से दो चार पैसे पा जायगे, सोइस वसन्ता का सत्यानाश हो पास का भी जो कुछ आज कमाया था सब जो चले और तन का एक २ कपडा देखो चिरवची हो गया। बचा की खूब पूजा भी की गई जन्म भर याद रहेगा। अरे यह कहो न जानिये किसकी पुन्याई सहाय लगी कि दोनों बाबू सहाल कर निकल भागे नहीं तो सब इज्जत खाक में मिल जाती। और कब तक बचे रहेंगे, यही लच्छन हैं तो

एक दिन बढ़ई का हाथ गया दाखिल है । पतरे की मा कब तक खैर मनावेगी । हा ! सोने का घर खाक में मिला जाता है। क्या कहते हो 'बड़े सेठ बाबुओं को तो चन्दू के हाथ में सौंप गये थे' । हा हा सौंप तो गये थे पर कण्टकरूप दुष्टों के रहते जब उस बेचारे की कुछ चलने पाती ? लाचार, हो वह भी छोड़ कर चला गया । चन्दू से गुनी, सुशील, भलेमानुष का तो जहा तक तारीफ की जाय सब कम है । उसके सुयश की सुगन्धि के सामने बूढ़े बाबा मण्डन महाराज थे हम लोग भूल ही गये थे । धिक् ! नराधम ! पापी ! कर्मचाण्डाल ! तेरा इतना साहस कि तूने भले घर की बहिअरवानियों का सतीत्व नष्ट करना अपने लिए मोद और दिलबहलाव समझ लिया था । हा ! हा ! हा ! बचा पर सब पड़ी, स्त्रियों का मेख घर कैसा बहिअरवानियों में आ मिला था । पूजा भी हुई और अब पुलिस के चगुल में पड़ गया है ये लोग सब तके हुई हैं बसन्तवा से भरपूर दाव लेंगे । सच है बुरे काम का बुरा अजाम । दोनों बाबू भी बसन्ता की इस दुष्ट अभिसन्धि में अवश्य थे, कुशल हुई जो इन्हें भी इसमें फँसते देख एक आदमी इनको उसी भीड़ से किसी तरह अलग कर गाड़ी पर चढ़ाय ले भागा । वह आदमी कौन था, मैं अच्छी तरह न पहचान सका पर मुझे दूर से चन्दू का सा चेहरा उसका मालूम हुआ । जो हो अब हम भी घर जाय" ।



आठवां प्रस्ताव।

कोयला होय न ऊजरो सौ मन साबुन लाय।

यद्यपि इन दोनों बाबुओं के आंख का पानी ढरक गया था शरम और हया को पी बैठे थे, कार्य अकार्य में इन्हें कुछ सकोच न रहा, धृष्टता, अशालीनता और बेहयाई का जामा पहन सब भांति निरंकुश और स्वच्छन्द बन गये थे। पर उस दिन इन का पुलिस के घेरे में आ जाना और बसन्ता के साथ इन की भी लेय देय करने पर लोगों की ताक देख दोनों कुछ सहम से गये और मनोमन अपनी कुचाल पर कायल होने लगे। यह आदमी जिसे हम सौ अजान में एक सुजान कहेंगे और जो इन दोनों को भीड़ से बाहर निकाल लाया, जिसका पूरा परिचय हम अपने पाठकों को दे चुके हैं, इन्हें घर पहुंचाय इनसे बिदा मांगी। ये दोनों अत्यन्त लज्जित थे, आंख इनके सामने न कर सके, सिर नीचा किये घर तक गाड़ी पर बैठे चले आये। गाड़ी से उतरते भी इन को कुछ बोलने की हिम्मत न होती थी, किन्तु इनके उस समय के हृद्गत भाव से प्रगट होता था कि ये दोनों उस महात्मा सुनार के बड़े एहसानमन्द हैं। इन्हें अत्यन्त लज्जित और दुःखमन देख वह बोला "बाबू तुम कुछ मत डरो न किसी तरह का संकोच मन में लाओ, बीती बात का अब विचार ही क्या "गतं न शोचामि" आगे के लिए सम्हाल कर चलो। अभी कुछ बिगड़ा नहीं, सबेरे का भूला सांझ को आवे तो उसे भूला न कहेंगे। अब इस समय तो रात हो गई थके थकाये हो जाय खा पीकर आराम करो। कल सबेरे मैं तुम्हारे यहां फिर आऊंगा" यह कह उसने अपने घर की राह ली।

अब नित्य के आने वाले सब छुट्टा पाय लौटने लगे। कोई कहता था "आज क्या सबब जो बाबुओं के बैठने का कमरा बन्द है, बसन्ता भी नहीं देख पड़ता। बाबुओं को भगवान् सलामत रक्खे हम लोगों की घड़ी दो घड़ी बड़े चैन और दिल्लगी में कटती है। हम लोग यहा बैठ कितना हल्लागुल्ला और धौलधक्कड़ किया करते हैं पर बाबू साहब कभी चू नहीं करते"। दूसरे ने कहा "सच है रियासत के माने हो यह हैं, इस समय अब इस दयार में तो दूसरा ऐसा रईस नहीं है, हरकसेवाशद कोई आवे यहा से नाउम्मेद न लौटेगा"। तीसरे ने कहा "सच है, इसमें क्या शक, बाबुओं की जितनी तारीफ की जाय सब जा है, पर यार बसन्ता भी बड़ा बेनजीर आदमी है। यह सब उसी के दम का जहूरा है। जब से बसन्त राम का अमल दखल हुआ तब से हम लोगों ने भी इस दरबार में जगह पाया। बड़ी बात, मनहूस कदम उस पण्डत का तो बेरा उड़ा, बसन्ता ही ऐसा था जिसने हजार २ कोशिशों के बाद बाबुओं को उसके चंगुल से छुड़ाय आजाद किया, न जानिये कहा का मरा खिलाना धुम्देनातदाश इस दरबार में आ भिड़ गया था।"

इधर इन दोनों में बड़े को जिसे छोटे की अपेक्षा कुछ २ समझ आ चली थी मन में भांति २ का हरन गुनन करते टाइमपीस पर घड़ा और मिनट गिनते नींद न पड़ी। रात भोर हो गई, चिड़ियें चहचहाने लगीं, स्कूल के पढ़ने वाले परिश्रमी बालक ब्राह्मी बेला समझ अपना २ पाठ घोख २ सरस्वती देवी का अनुशीलन करने लगे। प्रत्येक घरों में वृद्धजन समस्त दिन का कल्याण सूचक हरि के पवित्र नामोच्चारण में तत्पर हो गये; कामीजन रात भर कामकेलि में बिताय

सबेरे की ठंडी हवा पाय चौगुना खुर्राटा भरने लगे; चण्डू खानों में अफीमची और चण्डूबाजों की रात भर की पालिश मेंट के बाद पीनक की सुखनींद का प्रारम्भ हो गया; आस पास मन्दिरों में मंगला आरती के समय का सूचक घड़ियाल और शंख शब्द सुन भक्त जय जय कहते दर्शन के लिये दौड़े, फेरी वाले भिखमंगे भोरही आलापते गलियों में घूमने लगे; पौफट होते ही अपनी प्रेयसी निशा नायिका का वियोग समझ चन्द्रमा के मुख पर उदासी छा गई; बने २ के सब साथी होते हैं बिगड़े समय कोई साथ नहीं देता मानो इस बात को सिद्ध करते अपने मालिक चन्द्रमा को विपत्ति में पड़ा देख नमकहराम नौकर की भांति तारागण एक २ कर गायब होने लगे, अथवा काल कैवर्त ने आकाश महा सरोवर में निशारूपी जाल बड़ी दूर तक फैलाय जीती हुई मछली की भांति सबों को एक साथ समेट लिया, अथवा यों कहिये सूर्य रूपी कबूतर की तरह अपनी कार्मुक से निकलते ही घायलों की बड़ी २ किरनों से इन ताराओं को एक २ कर सबों को चुग गया, अथवा प्रात सन्ध्या अपने रक्तोत्पलसदृश हाथ को बार बार फैलाय फैलाय अपनी प्रिय सखी वासरश्री का उसके कान्त दिनमणि सूर्य से मिलने का समय जान, इन तारा मौक्तिकों का हार उसके लिये गुथन को इन्हें इकट्ठा कर रही है। अपने विजयी प्रभाकर की विजय पताका समान सूर्योदय की लाली सब ओर दिशा विदिशाओं में छा जाते ही अन्धकार का हृदय सा मानो फट सी २ टुकड़े हो गया। शनै शनै उदयाचलवाल मन्दार के फूलों का गुच्छा सा, अथवा पूर्व दिगङ्गना के लिलार पर रोली का लाल बेंदा सा, या उसी के कान का कुण्डल सा, या आसमान गुम्बज पर

सोने का कलश सा अथवा देवाङ्गनाओं के मस्तक का सीस फूल सा अथवा चराचर विश्वमात्र को निगल जानेवाले काल महासर्प का अंडा सा, कमल के वन को प्रफुल्लित करता हुआ चकवाक के विरहाग्नि को बुझाता हुआ, जगमें जगत्‌नाथ के नेत्र को प्रकाश पहुंचाता हुआ, श्रोत्रिय धर्मशील ब्राह्मणों को सन्ध्या और अग्निहोत्र आदि कर्म में प्रवृत्त करता हुआ, सूर्य का मण्डल पूर्व दिशा में सुशोभित होने लगा। सब लोग अपने अपने रोजमर्रे के काम में प्रवृत्त हुये। बाबू भी रात भर जागने की खुमारी में अलसाने से शौच कर्म और दतून कुल्ला से फारिग हो अपने कमरे में आ बैठे किन्तु आज रोज का सा इसका चेहरा खुश न था। देखते ही भासित हो जाता था कि चित्त में इसके कोई गहरी चोट का धक्का लग गया है। नौकर चाकर तथा और सब लोग जो इसके पास नित्य पे आने वाले थे इसे उदास और बुझा मन देख मनीमन अनेक तरह के तर्क वितर्क करने लगे, पर इसकी उदासी का कारन न जान सके।

इसी समय चन्दू दूर से आता हुआ देख पड़ा। पण्डिताई, नेकचलनी और पल्ले सिरे का खरापन इसके चेहरे पर झलक रहा था, इसकी गम्भीरता और सागर समान गुणगौरव में स्वच्छ उदार भाव मानो लहरा रहा था; इन बाबुओं की भलाई और खैरख्वाही इसे दिल से मंजूर थी, लल्लोपत्तो, जाहिरदारी और खुशामद की जरा भी गुंजाइश इसके मिज़ाज में न पाय दुनियादारी की इसके सामने कुछ न चलती थी, जो लोग बाबुओं को फसाय अब तक बेखटके लूट मार खा पी रहे थे उनके जी में खलबली पैठ गई, कानो कान कहने लगे—"क्या है! जो यह मनहूस कदम आज फिर यहां देख पड़ा, इसके सामने अब हम लोगों की एक भी न चलेगी,

बडे मुशकिलों से इसका पैरा यहा से वह गया था, क्या सबब हुआ जो यारुओ को आज इसकी फिर चाह हुई"। चन्दू को आया देख बाबू उठ खडे हुये, इसका पाव, हाथ पकड अलग कमरे में ले गये और मना कर दिया कि यहा कोई न आवे। यहा बैठ इधर उधर की दो एक और बात कहने के उपरान्त चन्दू बोला —

"बाबू; अब तुम्हें इन साथियों की परख हुई होगी। ये सब अपने मतलब के यार हैं, तुम्हें सब तरह पर बिगाड अपने अपने घर बैठेंगे। सपूती के ढग से बडे सेठ जी के देखाये पथ पर, जो अब तक तुम चले गये होते तो तुम्हारे सुयश की सुगन्धि ससार में चौगुनी फैलती। सभ्य समाज और बड़े लोगों में प्रतिष्ठा और इज्जत पाते, धन सपत्ति भी चन्द्रमा की कला समान दिन २ बढती जाती। बाबू, मैं जी से तुम्हारा उपकार और भला चाहता हू किन्तु जब मैंने अपनी ओर तुम्हारी अश्रद्धा और अरुचि देखी तो अलग हो गया, अस्तु अब भी तुम चेतो और अपने को सम्हालो, अभी कुछ बहुत नही बिगडा, सेठ जी के पुण्य प्रताप से तुम्हें कमी किस बात की है? बाबू, तुम ऐसे निरे मूर्ख भी नहीं हो जो अपना भला बुरा न समझ सकते हो, किन्तु तुम भी क्या करो यह नई जवानी का मदरूप अन्धकार ऐसा ही होता है जो नसी हत और उपदेश के सहस्र दीपावली की जगमगाहट से भी दूर नहीं हो सकता। इस उमर में जो एक प्रकार की खुदी सवार हो जाती है, जिसे दर्पदाहज्वर को गरमी कहना चाहिये, वह सैकडों शीतोपचार से भी नहीं घट सकती। विष समान विषयास्वाद से उत्पन्न मोह ऐसा नहीं होता कि झार फूक और टोना टनमन का कुछ असर उस पर पहुचे—

"इस चढती जवानी में यदि कहीं ईश्वर का दिया सब सामान भोग विलास का और मनमाना धन सपत्ति मिली तो शिक्षा, विज्ञान, चातुरी और फिलासफी सब उलटाही असर पैदा करती हैं । उपदेश और विद्याभ्यास दोनों इसी लिये हैं कि आदमी को बुरे कामों की ओर से हटाय भले कामों में लगावें । यह एक प्रकार का ऐसा स्नान है जो शरीर को नहीं वरन् मन के मैल को धोकर साफ कर देता है । इस पुनीत तीर्थोदक में एक बार भी जिसने भक्ति श्रद्धा से स्नान किया है वह जन्म भर के लिये शुद्ध और पवित्र हो जाता है, और उपयुक्त समय इस तीर्थोदक से स्नान का यही था । सेठ जी से बुद्धिमान् यह सब सोच समझ तुम्हें मेरे सिपुर्द कर आप निश्चिन्त हो बैठे थे । मैंने पहले ही कहा कि श्रद्धा इसके लिये पहली बात है, जब उसमें कमी देखी गई तो हम अलग हो गये। फिर भी सेठ जी का पूर्व उपकार समझ जी न माना इसलिये आज फिर मैंने तुम्हें एक बार और चिताने का साहस किया । आशा है अब आप मेरे इस कहने पर कान देंगे और अपने काम काज में मन लगावेंगे—

"तुम्हें चाहिये कि तुम ऐसे ढग से चलो कि भले मनुष्यों में तुम्हारी हसी न हो, बडे लोग तुम्हें धिक्कारें नहीं, तुम्हारे हितैषी तुम्हारा सोच न करें, धूर्त भाड भगतिये तुम्हें ठगें नहीं, चतुर सुजान तुम्हारा निरादर न करें, खुशामदी लोग अपने कपट जाल में तुम्हें फसाय शिकार न बनावें, ओछे और दुष्टों की सोहबत से दूर हटते रहो बुद्धिमान् लोग कह गये हैं —

नाक लाज अरु आफत काज
द्रव्य बचा के राखो साज ।

"यह मत समझो सेठ जी की कमाई सदा ऐसी ही थिर बनी रहेगी, बराबर खर्च करते रहो और उसमें मिलाओ कभी कुछ नहीं तो असख्य धन भी नहीं रह जाता। और भी कहा है—

घर का खर्च देखा करो,
भारी देखो हलका करो।

"बाबू अभी तुम्हें नहीं मालूम होता पीछे पछताओगे। चिकने मुह के ठग की भाति इस समय सभी तुम्हारी हा में हा मिलाते हैं पीछे तुम्हारी छाया तक सरकाने लगेंगे। कहावत है—'छूछा तोहि को पूछा'

तिहीदस्ती भी चलाती है कहीं अच्छी चाल।
खाली थैली न खड़ी होगी कभी लक्खो साल।

"मन नहिं सिन्धु समाय"। इस मन की उमग को बढाते क्या लगता है, एक बात में जरा सा तरहदारी और अच्छेपन का दखल होना मात्र चाहिये। अच्छी धोती को अच्छा अनरखा, अच्छी पगडी न होगी तो सजावट और तरहदारी कोसों दूर भगैंगी। जब अच्छा दुशाला हुआ तो मोतियों का माला क्यों न हो। नफीस पोशाक के लिये नफीस सवारियाँ भी होना ही चाहिये, जब सवारी हुई तो दस पाच यार दोस्त क्यों न हों, अब खान, पान, लेने देन सब उज्वल होने की ओर ख्याल दौडा, तात्पर्य यह कि एक बात में भी जहा जरा सा तरहदारी और अच्छेपन को जगह दी गई कि रूह की आग हो जाती है, इसलिये किसी ने सच कहा है—

एक शोभा के लिए मन मारा।
तो किया अनेक पीड़ा से निस्तारा॥

"बाबू, तुम समझते हो सदा दिन ही रहेगा रात कभी होहीगी नहीं। बड़े सेठ साहब कितनी मेहनत और उद्योग से तुम्हारे लिये कुबेर की सी सम्पदा सञ्चित कर गये हैं, तुम्हारी सपूती इसी में है कि तुम उसे बनाये रहो। तुम कहोगे यह जात का दरिद्र ब्राह्मण अमीरी की कदर जाने क्या! पर मैं कहता हूं यह अमीरी किस काम की जिससे पीछे फकीरी झेलनी पड़े। सच है—

धनवन्तो के घर के द्वार।
सब सुख आवैं बारम्बार॥
जिसके होवै पैसा हांथ।
उसका देवै सब कोई साथ॥
उद्योगी के घर पर खड़ी।
लक्ष्मी झूमै खड़ी खड़ी॥

"धनी के पास सब आते हैं, वह किसी को ढूढने नहीं जाता, कहा है—

प्यासा ढूंढै मीठा कूप।
कूप न ढूंढै प्यासा भूप॥

"बाबू, मैंने यावत् बुद्धिबलोदय तुम्हें चिताने में कोई बात उठा नहीं रक्खा मानना न मानना तुम्हारे आधीन है,

स्याने को जरा इशारा, मूरख को कोडा सारा'

यह कह चन्दू उठ खडा हुआ। इसने बडी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। चन्दू आशीस दे घर की ओर चम्पत हुआ। कुछ दिन तक इसकी नसीहत का बाबू पर बडा असर रहा और ठीक २ क्रम पर चला किया। अन्त को हजार मन साबुन से धोते रहो वही कोइले का कोइला।

नववां प्रस्ताव।

चार दिना की चांदनी फिर अंधियारा पाख

चन्दू के उपदेश का असर बडे बाबू पर कुछ ऐसा हुआ कि उस दिन से यह सब सोहबत सगत से मुह मोड अपने काम में लग गया। सवेरे से दोपहर तक कोठी का सब काम देखता भालता था और दोपहर के बाद दो बजे से इलाकों का सब बन्दोबस्त करता था। वसूल और तहसील का एक एक मद खुद आप जाचता था। उजडे असामियों को दिलासा दे और उनकी यथोचित सहायता कर फिर से बसाता था और जो कारिन्दों की गफलत से सरहग हो गये थे उन्हें दबाने और फिर से अपने कब्जे में लाने की फिकिर करता था। सुबह शाम जब इन सब कामों से फुरसत पाता था तो गृहस्थी के सब इन्तिज़ाम करता था। भाई बिरादरी, नाता रिश्ता तथा हवेली में किस बात की ज़रूरत है इसकी सब सलाह और पूछ ताछ नित्य घडी आध घडी अपनी मा से

किया करता था। इसकी मा रमादेवी अब इसे सुचाल और काम पर देख मनीमन चन्दू की बडी एहसानमन्द थी और जी से उसे असीसती थी। चन्दू का इन बाबुओं से यद्यपि कोई लगाव न रह गया था पर रमादेवी से सब सरोकार इसका वैसा ही बना रहा जैसा हीरा चन्द से था। रमा बहुधा चन्दू को अपने घर बुलाती थी और कभी २ खुद आप उसके घर जाय इन बाबुओं का सब हाल और रंग ढंग कह सुनाती थी। चन्दू पर रमा का पुत्र का सा भाव था बल्कि इन दोनों की कुचाल से दुःखी और निराश हो चन्दू को इसने अपना निज का पुत्र मान रक्खा था। रमा यद्यपि पढी लिखी न थी पर शील और उदारता में मानो साक्षात् शची देवी का अनुहार कर रही थी। पुरखिन और पुरनिया स्त्रियों के जितने सद्गुण हैं सब का एक उदाहरण बन रही थी। सरल और सीधी इतनी कि जब से अपने पति हीरा चन्द का वियोग हुआ तब से दिन रात में एक बार सूखा अन्न खाकर रह जाती थी। सब तरह के गहने, भांति २ के कपडों के रहते भी केवल दो धोती से काम रखती थी। कितनी राड, बेवाओं और दीन दुखियाओं को, जिन्हें हीरा चन्द गुप्त रूप से कुछ न कुछ दिया करता था, वह बराबर अपनी निज की पूंजी से, जो सेठ इसके लिये अलग कर गये थे, बराबर देती रही। शील और संकोच इसमें इतना था कि जो कोई इसे अपनी जरूरत पर आय घेरता था उसके साथ जहा तक बन पडता था कुछ न कुछ सलूक करने से नहीं चूकती थी। घर के इन्तजाम और गृहस्थी के सब काम काज में ऐसी दक्ष थी कि बहुधा जाति बिरादरी वाले भी काम पडने पर इससे आकर सलाह पूछते थे। बूढी हो गई थी पर आधा घूंघट सदा काढ़े रहती थी।

केवल नाम ही की रमा न थी गुण भी इसमें सब वैसेही थे जिससे इसका रमा यह नाम बहुत उचित मालूम होता था। प्रायः देखा जाता है कि सास और बहुओं में और बहू बहू में भी बहुत कम बनती है और इस न बनने में बहुधा हम उन कमबख़्त सासों ही का सब दोष कहेंगे क्योंकि बहू बेचारी का तो पहले पहल अपने मायके से ससुर के घर में आना मानो एक दुनिया को छोड़ दूसरी दुनिया में प्रवेश करना है। फिर से नये प्रकार की जिन्दगी में पांव रखना है, जिसे यहां कुछ दिनों तक जितनी बातें सब नई २ देख पड़ती हैं। जैसा कोई पखेरू जो पहले स्वच्छन्द मन माफिक विचरा करता था पिंजड़े में एकबारगी लाय बन्द कर दिया जाय, सब भांति पराधीन आजादगी को कभी ख्वाब में भी दखल नहीं, अन्तिम सीमा की लाज और शरम ऐसा बहू के इसका आंचर पकड़े रहती है कि कभी एकदम के लिए भी छुट्टी नहीं दिया चाहती। इस दशा में जो चतुर सयानी घर की पुरखिनें हैं वे ऐसे ढंग से साम दाम के साथ नई बहुओं से बरतती हैं कि उन्हें किसी तरह का क्लेश न हो और सब भांति अपने वश की भी हो जाय। सास यदि फूहर और गवार हुई तो दोनों में दिन रात की कलकल और हाताकिटकिट हुआ करती है। इस हालत में यह घर नहीं वरन नरक का एक छोटा सा नमूना बन जाता है। इस रमा का क्या कहना है, यह तो मानो साक्षात् कोई देवी थी। स्त्रियों के दुर्गुणों की इस में छाया तक न आई थी। इसने अपनी दोनों बहुओं को ऐसे ढंग से रक्खा कि वे दोनों इसकी अत्यन्त भक्त और आज्ञाकारिणी हुईं, और आपस में ऐसा मिलजुल कर रहती थीं कि बहन बहन मालूम होती थीं। यह कोई नहीं कह सकता कि वे

देवरानी जेठानी हैं, और ससुरार के सुख के सामने मायके को ये दोनों बिलकुल भूल गईं। पाठकजन, हम आशा करते हैं आप लोगों को ऐसी ही रमा की सी घर की पुरखिन और दो सुशीला बहुओं की सी बहू मिलें जैसा सेठ हीरा चन्द और इन दोनों बाबुओं को मिली हैं।

दशवां प्रस्ताव।

संगत ही गुन उपजै—संगत ही गुन जाय।

हीरा चन्द के घर से दस घर के फासिले पर कुछ कच्चा कुछ पक्का एक मकान था, उसमें नन्द दास नाम का एक मनुष्य रहता था। यह कौन था और कब से यहां रहता था इसका कोई ठीक पता नहीं मालूम, पर इतना अलबत्ता पता लगता था कि यह हीरा चन्द का बिरादरी था और इन बाबुओं को भैया २ कहा करता था। इससे यह भी कुछ टोह लगती थी कि इसका बाबुओं के घराने से कोई दूर का रिश्ता भी रहा हो तो क्या अचरज! बाबू के नौकर सब इसे नन्दू बाबू कहा करते थे। बाप इसका शुरू में एक साधारण सी दूकान कपड़े तथा दूसरी दूसरी देशी चीजों की करता हुआ निरा बक़ाल के सिवा किसी गिनती में न था। मसल है "तीन दिवाले साव", इस हिकमत को अमल में लाय कई बार दिवाला काढ़ और पीछे आधे तिहाई पर अपने देनदारों से मामिला कर लाख पचास की पूंजी भी इसके लिये छोड़ गया था, इस लिये नन्दू अपना दिमाग इन बाबुओं से कुछ कम न रखता था। थोड़ी उर्दू जानता था; टूटी फूटी अङ्गरेजी

भी बोल लेता था, यहीं के दिहाती मदर्सों में पढा था, दो एक छोटे मोटे इम्तिहान भी पास किये था; बस इतनाही कि मुख्तारी और मुन्सिफी तक वकालत करने का इख्तियार हासिल था। पर कानूनी लियाकत में अपने आगे हाईकोर्ट के वकीलों को भी कुछ माल न गिनता था और साधारण लियाकत में तो बृहस्पति और शुक्राचार्य को भी अपना चेला समझे बैठा था। तरहदारी और अमीरी में पूरा दम भरता था, पर उस तरह की तरहदारी और अमीरी नहीं कि गांठ का पैसा खो बैठे, वरन ऐसे ऐसे लटके सीखे था कि किसी ऐसे बडे मालदार नये उभडे हुये को ढूढें जिसे कोई रोकने टोकने वाला न हो, वरन कमसिनी ही में खुदमुख्तार बन बैठा हो। नितान्त अल्पज्ञता के कारण इतना मदान्ध और निर्विवेक था कि बहुधा अपने छिछोरपन और सिफलापन के सबब शिष्ट समाज में कई बार भरपूर दक्षिणा पा चुका था, तौभी अपने छिछोरपन से बाज नहीं आता था। यदि कोई समझदार और तमीज वाला होता तो आत्मगौरव न रहने के रज से समाज में फिर मुह न दिखलाता। पर गैरत को तो यह घोल कर पी बैठा था, इसके आंख का पानी ढरक गया था। शरम और हया कैसी होती है जानता ही न था। सच मानिये शिष्टसमाज और शिराफत के कलङ्क ऐसे ही लोग होते हैं जो जाहिरा में दिखलाने को ऐसा रगे चुगे चूना पोती कबर के माफिक बने ठने रहते हैं कि बस मानो रियासत के खम हैं; शिष्टता के स्रोत हैं, भलमनसाहत के नमूने हैं, पर भीतर पैठ कर देखो तो उन के घिनौने और मैले कामों से जो इतना घिनाता है कि ऐसो का सपर्क कैसा, मुखमात्र अवलोकन में महा प्रायश्चित लगता है। ऐसो के सपर्क से जो

ते हुये हैं उन पर ईश्वर की मानो बड़ी कृपा है। आखें घुसी, गाल फूले, चेचकरू, फोती गरदन, पस्तकद, किन्तु बनावट और सजावट में यह कामदेव से उतर कर दूसरा दरजा अपना ही कायम करता था। नन्दूही के समानशील लोगों का एक गण का गण था, जो महादेव के गण नन्दी, भृङ्गी के समान इसके आश्रित थे। उन सबों में एक इसका बड़ा विश्वासपात्र था, नाम इसका रघुनन्दन था पर नन्दू इसे रघू कहा करता। जाति का रघू ब्राह्मण था पर कदर्यता में अत्यन्त पामर महाशूद्र से भी गताढ़ केवल नामधारी ब्राह्मण था। नन्दू का ऐसा काम न होता था जिसमें रघू मौजूद न रहे, सच तो यों है कि नन्दू इस रघू का इतना आश्रित हो गया था कि बिना इसके नन्दू लुञ्ज पुञ्ज सा रहता। सांपरकी के समान नन्दू जिस काम में इसे प्रवृत्त कर देता था उसे पूरा होते ज़रा देर न लगती थी। बसन्ता जैसा उन बाबुओं का परिचारक और मुसाहिब खुशामदी था वैसा ही रघू नन्दू बाबू का अनुचर था। अन्तर उसमें और इसमें केवल इतनाही था कि बसन्ता निपट निरक्षर कुन्दे-नातराश था, पर रघू को अक्षरों से भेंट थी, पर वही नाम-मात्र को, इतना कि जिससे हम इसे पढ़ा लिखा या साक्षर नहीं कह सकते। बसन्ता निपट उजड्ड और अजन्य था, किन्तु रघू चालाकी में पकता और अमीरों का रुख पहचान उन्हें खुश रखने के हुनर में बहुत प्रवीण था। जहा २ नन्दू आया जाया करता था, वहा २ रघू उसका पुछल्ला ही था, तब क्यों-कर सम्भव था कि इसके चरण भी वहा न पधारें। इस द्वार से प्राय अनन्तपुर के छोटे बड़े रईस तथा आसपास के तअल्लुके दारों से इसकी भरपूर जान पहचान हो गई थी। यहा तक

कि इन अमीरों में यह "नन्दू के रग्घू" इस नाम से प्रसिद्ध था। रग्घू की भी अपनी तरहदारी और अन्दाज का दिमाग नन्दू बाबू से कुछ कम न था। घर में चाहो भूजी भाग न हो पर बाहर यह ऐसे अन्दाज से रहता था कि एक नया आदमी जो इसका सब कच्चा हाल न जानता हो इसे बड़ा अमीर मान लेता।

नन्दू का बड़ा प्रेमी और दिली दोस्त एक तीसरा आदमी और था, इसके जन्म कर्म का सच्चा हाल किसी को मालूम न था पर नन्दू इसे हकीम साहब कहा करता था। हकीम साहब अपने को नवाबजादा बतलाते थे और अपनी पैदाइश का हाल बहुत छिपाते थे, पर जो असिल बात होती है वह किसी न किसी तरह अन्त को प्रगट हो ही जाती है। असलीयत इसकी यों है कि इसका बाप कन्दहार का रहने वाला नवाब शुजाउद्दौला के खुशामदी उमराओं में से था। इसने एक खानगी रख ली थी, उससे एक लड़की और एक लड़का हुआ था। उपरान्त का हाल फिर कुछ मालूम नहीं कि यह लखनऊ से यहां क्योंकर आया और कब से यह अनन्तपुर में आ बसा। उस कन्दहारी अमीर की दूसरी औलाद इसकी हमशीरा को भी बराबर तलाश करते रहियेगा तो हमारे इसी किस्से में कहीं न कहीं पर अवश्य ही पा जाइयेगा। यह हकीम साहब बाहर तो बड़े तूमतड़ाग और लिफाफे से रहते थे पर भीतर मियां के, सिवाय एक टूटी खाट और तीन सनहकी के कुछ न था। असल में इसका नाम क्या था कौन जाने पर सब लोगों में हकीम फीरोजबेग कन्दहारी अपने को मशहूर किये था। नन्दू इसका सिद्धसाधक था इस लिये जहां तक बन पड़ता छोटे बड़े सबों से इसकी बहुत सी

शरीफ कर कराय इसका प्रवेश उस ठौर करा देता था। यह क्यों इसकी इतनी शिफारिस करता था इसका भेद भी आप धीरज धरे चले चलिये खुली जायगा। इस बात के ताक में यों यह न जानिये कब से था कि किसी न किसी तरह हीराचन्द के घराने में हकीम साहब का प्रवेश करावें। पर चन्दू के कारण जो देखते ही आदमी की नस नस पहचान जाता था, दूसरे हीरा चन्द की स्त्री रमादेवी के कारण, जिसें हकीमी दवा तथा मुसलमानों से किसी तरह का सम्पर्क रखने में घिन और चिढ थी, नन्दू की कुछ चलती न थी। हकीम भी यह केवल नाम ही का हकीम था, हिकमत मुतलक न पढ़ा था। मुसलमानों में यह एक चलन है कि जो लोग कुछ पढे लिखे होते हैं और उन्हें कहीं कुछ जीविका का डौल न लगा तो वे या तो हकीम बन जाते हैं या मौलवी हो लडकों को पढा अपना पेट पालते हैं। पढा लिखा तो यह बहुत ही कम था, पर शीन काफ का ऐसा दुरुस्त और बातचीत ऐसी साफ करता था कि कहीं से पकड न हो सकती थी कि यह मूर्ख है। तस्बी एकदम इसके हाथ से न छूटती थी। देखने वाले तो यही समझते थे कि हकीम साहब बडे दीनदार और खुदापरस्त हैं पर इस तस्बी से कुछ और ही मतलब निकलता था। तस्बी की गुरियों को जो यह जाहिरा में फेरा करता था सो मानो इसकी गिनती गिना रहा था कि इतनों को मैं अपनी चालाकी का शिकार बना चुका हूँ। तस्बी फेरते फेरते जो कभी कभी आख मूद लेता था सो मानो एक ध्यान लगा कर यह सोचता था कि नये असामियों को अब क्योंकर चगुल में लाऊ।

नन्दू बहुधा हकीम साहब की तारीफ बडे दावू से किया

करता था और दो एक बार अपने साथ ले भी गया, पर सिवा बन्दगी सलाम और रामरमौअल के पहिले के माफिक मुखातिब अपनी ओर तथा हकीम की ओर उसे न देख मनही मन मसोस कर रह जाता और चन्दू को सैंकडों गालियां दिया करता कि इस खूसट के कारण मेरा जमा जमाया कारखाना सब उचटा जाता है। अस्तु एक रात को अचानक बाबू के पेट में ऐसा शूल उठा कि इसे किसी तरह कल न पड़ती थी। मारे पीड़ा के इसकी आंख निकली पडती थी, दांत बैठे जाते थे, सब लोग घबड़ा गये। कई एक वैद्य और डाक्टर बुलाये गये, दवाइयां भी चार २ मिनिट पर कई बार और कई क़िस्म की दी गईं, पर दवाइयां तो कोई सजीवन बूटी हई नहीं कि गले के नीचे उतरते ही अमृत बन जाय। किन्तु अमीरी चोचलों में इतनी सौबर और धीरज कहां? सब लोग दौड़ धूप में लगे हुए–जिसे जो सूझा–तदबीरें कर रहे थे कि हकीम जी को साथ लिये नन्दू भी आया और बोला "हकीम जी इस जून आपके उस अर्क की जरूरत है जो आप ने एक बार मुझे दिया था। जनाब, अर्क क्या है सजीवन मूल है, देखिये कैसा तुर्त फुर्त, आपको, राहत होती है।" हकीम बोला "जनाबआली, मुझे क्या उजर है अल्लाह ताला आपको सेहत दे।" इसके पहले नींद की दवा दी जा चुकी थी, औंघाई आ रही थी कि इसी समय हकीम का वह अर्क भी दिया गया। अर्क पीने के बाद ही इसे नींद आ गई। रात भर खूब सोया किया।

दूसरे दिन नन्दू फिर आया और बाबू को चंगा देख बोला "भैया, अब तक तो मैं जब्त किये था, कुछ नहीं कहता सुनता था, आपको यह पण्डत किसी समय ऐसा धोखा

गा। कि जन्म भर पछताते रहेंगे, ये अपिण्डत पण्डित बदल होते हैं, ये हम लोगों की शाइस्तह जमात में कभी बैठ पाने लायक हो सकते हैं? उस अहमक ने तो कल आपकी जान ही ली थी, यह तो कहिये हकीम साहब कल आपके लिये ईश्वर हो गये, जान बचाया, नहीं तो कुछ बाकी रह गया था? हकीम साहब बड़े काबिल आदमी हैं, कहां तक उनकी तारीफ करूं, अबतो आप से उनसे सरोकार हो चला है दिनों दिन ज्यों ज्यों उनसे लगाव बढ़ता जायगा आप उनकी सिफतों को पहचानेंगे। खैर आपको सेहत हो गई, यकीन जानिये कल की रात हम लोगों की ऐसे फिक्र में बीती कि जन्म भर याद रहेगा। अच्छा तो बन्दगी अब रुखसत होता हूं दोपहर तक फिर आऊंगा और हकीम साहब को भी लेता आऊंगा।"

इसकी बातों का बाबू पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उसी दम से इसकी तबियत में चन्दू की ओर से घिन हो गई और जो कुछ कम इसमें सुधराहट और भलाई के आ चले थे सब बिदा होने लगे। हा, धूर्त चौपटों की बन पड़ी, बसंता भी इस समय तक जेल में छ महीने काट आ मिला, इन बाबुओं को फेगुन की रात कर उन्हें अपना शिकार बनाने को पूरा अन्दाज़ जमा होगया, सच है—"सङ्गत ही गुन उपजत सङ्गत ही गुन जाय"।

ग्यारहवां प्रस्ताव।

अवलंवनाय दिनभर्तुरभून्न

अनन्तपुर की घनी वस्ती के
खरड का एक पक्का मकान था,
लम्बा चौड़ा तो न था पर चारो ओर
किता का बना था कि रहने वाले को
सकता था। इस मकान के आगे के
एक वसीह कमरा था जिसपृ
ऐसी घुटी हुई थीं मानो सर्
कमरा इस ढङ्ग से आरास्ता
बदल करने से अङ्गरेजी
सका था। बाहर से
बराबर ऐसा ही पुरता,
बघमुहे मकान में यह
के पीछे पाव रखते ही
से नाक सड़ जाती थी।

हम पहले कह आये
काशी और मथुरा का
के जमाने में दिल्ली
गया। कुछ अर्से से इस
थे जिनकी हुस्नपरस्ती
धूम थी। यह कौन थे, कहा
आकर बसे थे कुछ मालूम नही

किस घसीले से यहाँ अनन्तपुर ऐसे छोटे कस्बे में यह आ रही। यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, पेरिस आदि बड़े बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कमती नहीं है, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अङ्गरेज इत्यादि हर एक कौम और जाति में एक से एक बढ़ बढ़ के खूबसूरती और सौन्दर्य में यकता हुस्न वाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहां श्यामग्राम के समान ऐसों का आ टिकना अलबत्ता एक अचरज या कौतुक था! जो हो यहां के लोग इसके निस्बत भान २ की कल्पनायें कर रहे थे। कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे, कोई कहते थे "नहीं नहीं यह दिल्ली के शाही घरानों में से है"; किसी का ख्याल था यह कश्मीर से आई है इत्यादि; और कोई इसे यहूदिन समझता था। वयक्रम इसका देखने में बाइस के ऊपर और पचीस के भीतर मालूम होता था। गोरा रंग, हीना से दामिनी सी दमकती हुई इसके एक एक सुडौल सांचे के ढले अङ्गों पर सुन्दरता बरस रहा था, बात चीत, चाल ढाल और वज़ेदारी से यह किसी अच्छे घराने की मालूम होती थी। इसके परदे में रहते न देख लोगों के मन में दृढ विश्वास जम गया था कि यह बम्बई की कोई पारसिन या यहूदिन है। थोड़ा उर्दू फारसी भी पढ़ी थी इसलिए इसकी ज़बान साफ और शीन काफ दुरुस्त था। एक प्रकार की संजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास और सलोनापन के साथ ऐसी मिल जुल गई थी कि देखने वाले के लोचनों की इसे बार बार देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी। यह अपने घने केश जालों में अलकावली की गुथन से तथा विकसित-पुण्डरीक-नेत्रों से वर्षा और शरद् ऋतुओं का मनुहार कर रही थी। वय सन्धि के कारण यह बाला

ग्यारहवां प्रस्ताव।

अवलंबनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत कर सहस्रमपि—भारवि।

अनन्तपुर की घनी बस्ती के बीचोबीच लवे सडक के खएड का एक पक्का मकान था,, यद्यपि यह मकान बड़ा लम्बा चौडा तो न था पर चारो ओर से हवादार और ऐसे किता का बना था कि रहने वाले को सब ऋतु में आराम पहुंच सकता था। इस मकान के आगे के हिस्से में ऊंची पाटन का एक वसीह कमरा था जिसकी दीवालें चटकीली सुफैदी पुती ऐसी घुटी हुई थीं मानो सगमरमर की बनी हो। और यह कमरा इस ढङ्ग से आरास्ता था कि इसमें थोडी ही अदल बदल करने से अङ्गरेजी ढग का उमदा ड्राइङ्गरूम भी हो सक्ता था। बाहर से देखने वाले समझते होंगे कि यह मकान बराबर ऐसा ही पुख्ता, वसीह और सुथरा होगा किन्तु इस बघमुहे मकान में यह कमरा ही सब की नाक था। इस कमरे के पीछे पाव रखते ही ओकाई आने लगती थी और दुर्गन्धि से नाक सड आती थी।

हम पहले कह आये हैं हीरा चन्द के समय जो अनन्तपुर काशी और मथुरा का एक उदाहरण था वह इन बाबुओं के जमाने में दिल्ली और लखनऊ का एक नमूना बन गया। कुछ अर्से से इस मकान में एक ऐसे जीव आ टिके थे जिनकी हुस्नपरस्तों के बीच उस समय अनन्तपुर में धूम थी। यह कौन थे, कहा से आये थे और कब से यहां आकर बसे थे कुछ मालूम नहीं, न यही कुछ पता लगता कि

किस वसीले से यहाँ अनन्तपुर ऐसे छोटे कस्बे में यह आ रहे। यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, पेरिस आदि बड़े बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कमती नहीं है; हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अङ्गरेज इत्यादि हर एक कौम और जाति में एक से एक बढ़ बढ़ के खूबसूरती और सौन्दर्य में यकता हुस्न वाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहां स्थानभ्रष्ट के समान ऐसों का आ टिकना अलबत्ता एक अचरज या कौतुक था। जो हो यहां के लोग इसके निस्वत भांत २ की कल्पनायें कर रहे थे। कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे, कोई कहते थे "नहीं नहीं यह दिल्ली के शाही घरानों में से हैं"; किसी का ख्याल था यह कश्मीर से आई है इत्यादि; और कोई इसे यहूदिन समझता था। बयक्रम इसका देखने में बाइस के ऊपर और पचीस के भीतर मालूम होता था। गोरा रंग, हीना से दामिनी सी दमकती हुई इसके एक एक सुडौल सांचे के ढले अङ्गों पर सुन्दरापा बरस रहा था, बात चीत, चाल ढाल और वज़ेदारी से यह किसी अच्छे घराने की मालूम होती थी। इसको परदे में रहते न देख लोगों के मन में दृढ़ विश्वास जम गया था कि यह बम्बई की कोई पारसिन या यहूदिन है। थोड़ा उर्दू फारसी भी पढ़ी थी इसलिए इसकी जबान साफ और शीन काफ दुरुस्त था। एक प्रकार की सजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास और सलोनापन के साथ ऐसी मिल जुल गई थी कि देखने वाले के लोचनों की इसे बार बार देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी। यह अपने घने केश जालों में अलकावली की गूथन से तथा विकसित-पुण्डरीक-नेत्रों से वर्षा और शरद् ऋतुओं का मनुहार कर रही थी। वय सन्धि के कारण यह बाला

बालभाव के पुण्य का ओर समझ मानो उसे छोड रही थी, और बिना किसी के दिये भी जो मन्मथ के आवेश के परवश हो गई सो मानो यौवन की, बन पडी कि आपसे आप आ कर यह उसके हस्तगत हुई। इसकी चढती जवानी का जोश और लुनाई क्या थी मानो इसको अपने प्रेम की सिद्धपीठ मानने वालों के आंख का एक ऐसा सुरमा था जिसे लगाते ही उनका मन इसकी ओर खिंच आता था, अथवा यों कहिये-इसका सुन्दरापा उनके मन के आकर्षण का एक मोहन मन्त्र था, या नवयौवन-युवराज के विजय का कीर्ति स्तम्भ था, अथवा कुम्हार के समान ब्रह्मा के बार बार सृष्टि गढने के अभ्यास का फल था, या रूप खजाने की रखवाली के लिए सिपाही था जिसे कामदेव यथेच्छाचारी राजा ने तैनात कर रक्खा था, या हर-नेत्र हुताश-दग्ध-अनङ्ग को फिर से जिलाने का सजीवन लटका था। निस्सन्देह यह युवती योवनचन्द्रोदय की चादनी थी; रति रसामृत की महा नदी थी, कान्ति की कौमुदी थी; दमकती द्युति सौदामिनी थी; अनङ्ग पहलवान के खेल की रंगशाला थी। पद्मराग समान लाल और पतरो होंठ, गोल ठुड्डी, ऊंचा चौडा माथा, कुन्द की कली से दांत, सीधी और बराबर उतार चढावदार सुग्गा के ठोर सी या तिल के पुष्प सी नासिका, गोल कपोल; कटीली और रसीली आंख, रेशम के लच्छे से सिर के बाल, सब मिल इसके चेहरे पर एक अनोखी छवि दरसा रहे थे।-यह अपने को हुमा बेगम के नाम से प्रसिद्ध किये थी। यह हुमा केवल खूबसूरती और शऊर में एकता न थी-किन्तु गाना, बजाना इत्यादि कई तरह के हुनर में भी अपनी सानी न रखती थी। अनन्तपुर ऐसे छोटे से कस्बे में तो इस कोकिलकण्ठी के

सौन्दर्य और गाने की धूम-थी। यद्यपि यहां के छोटे बड़े रइस सभी इसके मुश्ताक हो रहे थे किन्तु नन्दू तो इस पर तन मन से लट्टू था। अपने मामूली काम काज से फुरसत पाते ही यहा पहुंचता था। हुमा भी जो शऊर और ढगदारी में पल्ले दर्जे की चालाक थी, इसकी नस नस पहचान गई थी और इसे अपना खेलोना बनाये थी। अस्तु, उच्चपद से नीचे गिरते हुए मनुष्य को हजार २ तदबीर सब व्यर्थ होती है। सूर्य जब डूबने लगता है तो उसे हजार किरनें सब एक साथ थामती हैं पर वह नहीं रुकता, इसी तरह डूबते हुए इन बाबुओं के सम्हाल रखने को चन्दू तथा रमा ने कितनी कितनी तदबीरें और यतन किये किन्तु एक भी कारगर न हुए, अन्त को विष की गांठ सी यह हुमा ऐसी यहां आ बसी कि नन्दू सरीखे कुढंगियों को अपने ढंग पर इन बाबुओं को दुलका लाने और गढ़ कर अपना ही सा बना देने के लिए मानो औजार हुई। मसल है "एक तो तितलौकी दूसरे चढ़ी नीम" ये बाबू लोग तो यों ही यौवन और धन के मद से अन्धे हो रहे थे। चन्दू सरीखे चतुर सयाने प्रवीण के उपदेश का बीज-लाख लाख तरह पर उलटी सीधी बात सुझाने से कभी कभी जम आता था तो चारो ओर से दुःसङ्ग ओले के समान गिर उस टटके जमे हुए अङ्कुर का कहीं नाम और निशान भी न रहने देते थे। इसी दशा में रूप राशि हुमा ने अपने रूप का ऐसा गहरा जादू इन पर छोड़ा कि अब फिर सम्हलने की कोई आशा न रही। पर चन्दू इनकी ओर से सर्वथा निराश न हुआ था, यह इन्हें बार बार सीधी राह पर लाने की फिक्रि में लगा ही रहा। सौ अजान में एक सुजान पर ध्यान जमाये हमारे पाठक यदि हमारे साथ ऐसेही धीरे धीरे चले चलेंगे तो अन्त को एक बार चन्दू को कृतकार्य होते पावेहींगे।

बारहवां प्रस्ताव।

धूर्तैं जगद् वञ्चयते।

अनन्तपुर में छोटे २ मुकद्दमों की कार्रवाई के लिये तीसरे दरजे की मुन्सिफी, तहसीली की कचहरी और पुलिस का एक थाना के सिवाय और कुछ न था। फौजदारी तथा दीवानी के जो कोई भारी और पेंचीदा मुकद्दमे होते थे सब वहा के जिले की कचहरी लखनऊ में भेज दिये जाते थे। यहा हाल में एक मुन्सिफ मुकर्रर होकर आये थे। ये कौन थे, क्या इनका मजहब था, कुछ पता न लगता था किन्तु अपने रग ढग से नेचरिये जाहिर होते थे। पोशाक इनकी बिलकुल अङ्गरेजी वजा की थी, यहा तक कि कभी २ अङ्गरेजी टोपी (हैट) भी इस्तमाल करते थे, खाने पीने में भी इन्हें किसी तरह का परहेज न था, पैदाइश के तो हिन्दू ही थे पर यह नहीं मालूम कि इनकी क्या जाति थी। कोई इन्हें कश्मीरी समझता था, कोइ इस समय के तालीमयाफ्ता पढ़े लिखे लालाओं में मानता था। डाढी और चुटिया दोनों इनके न थी, रग भी गोरा था इसलिये जियादह लोगों की यही राय थी कि यह कोई हाफकास्ट केरानी या यूरोपियन हैं। पंडित या बाबू की उपाधि से इन्हें बडी चिढ थी, वह साहब बनने और अपने नाम के आगे मिस्टर लिखने की चाल बहुत पसन्द करते थे और अपने दोस्तों से इस बात की ताकीद भी कर दी थी। ये मिज़ाज या बर्ताव में अपने को सुशिक्षितों के सिरमौर मानते थे, पर दिल पर सुशिक्षा का असर पहुचा हो इसका कहीं कुछ लेश भी न था। चालाकी में अच्छे खासे पढ़े थे,

दश पन्द्रह वर्ष मुन्सिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा बहुत नीचा खाकर बल्कि पिट पिटा कर भी आठो गांठकुम्मैद हो चुके थे। मार्दों की नकल है कि दो सौ जूते खाकर भी इज्जत न गवाई। अपना रंग जमाने में तथा पाकेट गरम करने के फन में ये पूरे उस्ताद गुरुओं के भी गुरु थे, बल्कि यह ऐसे ही लोगों का कौल है कि ऐसा बलन्द इख़्तियार हासिल कर जिसने दियानतदारी की और फूक फूक पाव रखता हुआ कोरे का कोरा बना रहा वह लुत्फे हराम है, ऐसे बेअकिल को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये। ऐसे लोग इसकी दो वजह कहते हैं एक तो सियाह सुफैदी का कुल इख़्तियार हाथ में आना दूसरे बमुकाबिले अंगरेजों के जो छोटे से छोटे ओहदे पर डेढ़ हजार दो हजार महीने में तनख्वाह सहज में फटकारा करते हैं हम जो जन्म भर नौकरी कर लियाकत का जौहर दिखलाते हुये बराबर नेक नाम रह बुड्ढे होते २ पाव सौ छ सौ महीने में पाने लायक समझे गये तो इतने में होता ही क्या है, इतना तो हमारे शराब कबाब का खर्च है। ऐसे लोगों की, जो अपने गुनों में सब तरह भरे पूरे हैं, किसी नये जिले में पहुचते ही पहिली बात सरिश्ते की जाच और बात बातों पर तन्दीही करना है। जिन्हें अपने काम में चर्क और जाच की कसौटी में कसने पर खरे और बेलौस पाया उन्हें तबदील या मौकूफ करने की फिकिर में लगे। यह सब इस लिये करते हैं जिसमें ऊपर के हाकिमों को सबूत हो जाय कि यह दफ्तर की सफाई और अपने सरिश्ते का काम दुरुस्त रखने में बड़ा निपुण है। निश्चय जानिये यह सब उसी से बन पड़ेगा जो कलम का जोरावर, जबान का तर्रार, और हिम्मत का दबग हो। जो ऐसा नहीं है, बोदा और लियाकत

में नाम है, वह पाकेट गरम करने में भी सदा डरा करेगा, उसे चालाकी के खुल जाने का खौफ हमेशा दामनगीर रहेगा। पहले वर्ष छ महीने भीतर भीतर उस ज़िले का हाल दरियाफ़्त करेंगे कि यहां कौन कौन रईस हैं, किस हैसियत के मुकद्दमे लड़ने वाले हैं, क्या उनकी चालचलन है, किस तरह की उनकी सोहबत है, क्या काम उनके यहां होता है इत्यादि इत्यादि। किसी छोटे वकील को अपने इजलास में बढ़ा रखना भी एक ढंग ऐसे लोगों का रहता है। अस्तु, हमारे उक्त मुन्सिफ साहब यह सब भरपूर समझ बूझ गये थे और अब इस समय डेढ़ वर्ष के ऊपर यहां जमे इन्हें हो भी गया था। उनके ज़िले भर में जो जहां जैसे छोटे बड़े तअल्लुकेदार, रईस तथा सेठ, साहूकार, महाजन थे सब इनकी निगाह पर चढ़ गये थे। उन्हीं में ये दोनों बाबुओं का भी सब कच्चा हाल दरियाफ़्त किये हुये यही ताक में थे कि किसी तरह कोई मुकद्दमा इन बाबुओं का दायर हो। दो एक मुलाकात भी उनकी इनसे हो चुकी थी, तोहफे और नज़र भेंट की चीजें तो अक्सर आया ही करती थीं। नन्दू जिसे बाबुओं ने थोड़े दिनों से अपना मुख़्तारआम कर रक्खा था मुन्सिफ साहब तक बाबुओं की रसाई करा देने का एक ज़रिया था मसल है "चोरै चोर मौसियायत भाई"। इधर ये तो कुछ अपनी गौं में थे कि यह बड़े आला रईस के घर का गुर्गा है इसके ज़रिये मनमानता माल कट सकता है, उधर नन्दू अपनी ही घात में था कि ऐयाशी का चस्का तो इन्हे लगाही है किसी तरह इस मरदूद को भी बाबुओं की भांति अपने चगुल में फसा लें। तब क्या हमी हम देख पड़ें और अवध में बड़े से बड़े नवाबों से मेरा रुतबा और ठाठ कुछ कम न रहै।

बस यही हुमा बेगम इसके लिये भी काफी होगी। इसी नियत से यह अक्सर किसी न किसी बहाने लखनऊ में महीनों आकर टिका रहता था और मुन्सिफ साहब से रब्त जप्त भी खूब पैदा कर ली थी। यहां अपनी गैरहाजिरी में हकीम साहब से खूब ताकीद कर दिया था कि वह बाबुओं के रहन सहन और और चाल चलन को अच्छी तरह चौकसी के साथ देखते रहें, क्योंकि उसे यह डर बनी ही रही कि कहीं ऐसा न हो कि चन्दू फिर कोई उपाय बाबुओं को ढङ्ग पर लाने का कर गुजरे और उसका जमा जमाया सब खेल उचट जाय। इस बीच यहां हकीम साहब से बड़े बाबू की बेहद घिष्ट पिष्ट बढ़ गई, दिन दिन भर रात रात भर बाबू गायब रहते थे। बाबू, हकीम और नन्दू ये तीनों हुमा के ऐसे भक्त हो गये कि रातों दिन उसकी उपासना में लगे रहा करते थे, पर इसमें मुख्य उपासना बाबू ही की थी, क्योंकि ये दोनों तो मानो भारे के टट्टू से थे, उपासना काण्ड का पूरा दारमदार केवल बाबू ही पर आ लगा था। उधर छोटे बाबू की एक निराली ही गुट्ट कायम हो गई और दोनों मिलकर आवारगी में अव्वल दरजे की सार्टीफिकेट के बड़े उत्साही कैंडिडेट हो गये। हम ऊपर कह आये हैं, बड़े बाबू को चिट्ठी पत्रियों पर दस्तखत करना भी बहुत अग्र होता था। कोठी तथा इलाकों का सब काम मुनीम गुमाश्ते और कारिन्दों के हाथ में आ रहा। बहती गङ्गा में हाथ धोने की भांति सभी अपना अपना घर करने लगे। नन्दू मालामाल हो गया, क्योंकि हुमा की फरमाइशें इसी के जरिये मुहैया की जाती थीं, और यहां का कुल हिसाब किताब सब इसी के सिपुर्द था। यद्यपि बाबू की हुमा से रसाई कराने का खास जरिया हकीम ही था पर इस

के हाथ केवल ढाक के तीन पत्ते रहे। कारण इसका यही था कि नन्दू जात का वक्काल रुपये को अपनी जिन्दगी का सर्वस्व मानने वाला महाटञ्च बनिया था, रुपये की कदर समझता था और यह इसका सिद्धान्त था कि मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, शील, सकोच, मुलाहिजा सब रुपये के आधीन है, उसमें यदि हानि होती हो तो उमदा उमदा सिफ़्तें और बड़े बड़े गुन भार में झोंक दिये जांय —

अर्थोस्तु न केवलं—येनैकेन विना गुणास्त
णलवप्राया. समस्ता इमे ॥

इधर हकीम एक तो मुसलमान, दूसरे पुराने समय की अमीरी की बू में पगा हुआ था, घर में भूजी भांग भी चाहे न हो पर जाहिरा नुमाइश नौवाबों ही की सी रहना चाहिये। हकीम साहब जो दाने दाने को मुहताज थे बाबू की बदौलत अमीरों के से सब ठाठबाट और ऐश आराम में गर्क होगये। बाबुओं का सवाई डेहुडा खर्च हकीम साहब का होगया। जोड़ने की कौन कहे कर्जदार रहा किये। दूसरी बात हकीम साहब के यह भी जिहननशीन थी कि हुमा की यह सब कमाई जो इस समय बाबू को फसा बेशुमार माल चीर रही है वह भी तो आखिर मेरी ही है, क्योंकि सिवा मेरे हुमा के और दूसरा है कौन, हुमा भी जाहिरा में तो हकीम से कुछ सरोकार न रखती थी पर भीतर भीतर दोनों एक ही थे। दोनों के सूरत शकल में भी एक ऐसा मेल था कि ताडबाजों के लिए बहुत कुछ शक करने की गुंजाइश थी। रमा अपने दोनों लडकों के कुढंग से सोने का घर मिट्टी होते देख भीतर ही भीतर चूरचूर थी, खाना पीना तक छोड दिया और दुबला कर लकडी सी हो

गई थी। सौ सौ तदबीरें उनके सम्हलने की कर थकी, पर इन दोनों को राह पर आते न देख जहां तक हो सका कारबार सब तोड बैठी। बाहर की दूकानें सब उठा दिया केवल उतना ही मात्र रख छोडा जिसे वह अपने आप सहाल सकती थी और जिसे इसने देखा कि उठा देने से बडे सेठ हीराचन्द के नाम की हलकाई होगी और उसके स्थापित ठौर ठौर धर्म शाला, पाठशाला, सदावर्त इत्यादि का खर्च न सट सकेगा। दूसरी बात रमा को यह भी मालूम हुई कि एक चन्दू को छोड और जितने लोग पुराने पुराने इस घर के असरइत थे सबों ने, किसी को सम्हालने वाला न पाकर, जिससे, जहा, जितना, लूटते खाते बना मनमानता लूट खाया, मानो ये लोग सेठ के घराने के बिगडने के लिए उलटा माला सा फेर रहे थे। चन्दू अलबत्ता बाबुओं को राह पर लाने की फिकिर में लगा ही रहा, छिपा छिपा रोज रोज का इन दोनों का सब रंग ढंग तजबीजा किया और अपने भरसक छल बल कल से न चूका, जब तब आकर रमा को भी ढाढस दे जाता था। रमा का मन तो यद्यपि इन लडकों की ओर से बिलकुल बुझ सा गया था पर यह अब तक हिम्मत बाधे था कि इन दोनों को राह पर एक दिन अवश्य ही लाऊंगा, किन्तु जब तक ये गदहपचीसी के पार न होंगे और नई उमर का तकाजा ज्वर के समान चढा रहेगा तब तक इनका ढंग से होना दुर्घट है। उसे विश्वास था कि यदि बडे सेठ साहब की सुकृत की कमाई है और वे सिवाय भले कामों के मन से कभी किसी बुरी बात की ओर नहीं गये तो सम्भव नहीं कि उनकी औलाद पर उस भलाई का असर न पहुचे। यह कहावत कि, "बाढैं पूत पिता के धर्मे" कभी उलटी होहीगी नहीं। चन्दू इसी फिकिर में था कि

किसी तरह नन्दू से बाबुओं का लगाव छूट जाता तो उन दोनों का ढंग से हो जाना कुछ कठिन न होता। इधर नन्दू भी मन में सब समझ हुये था कि यह पण्डित मेरा पक्का दुश्मन है। यह यहां का रहने वाला नहीं, एक अजनबी परदेशी ने ऐसा कदम जमा रक्खा है कि बड़ी सेठानी वह मां जो यह कहता है वही करती हैं, नहीं तो जेसा मैंने बाबू का काठ का उल्लू बनाय अपने काबे में कर छोड़ा था वैसा ही रमा बहू को भी, जो, स्त्री की जाति हैं, मुट्ठी में करते क्या लगता था? इस लिये इस चन्दू से मेरे जी में हर तरह का खटक है क्या जानिये यह एक दिन मेरी सब चालाकी बाबू के जी में नक्श करा दे। खर देखा जायगा अब तो इस समय हीरा चन्द की कुल दौलत और राज पाट सब मेरे हाथ में है, अभी तो जल्द बाबू का यह नशा उतरने वाला है नहीं, तब तक में तो मैं कुल दौलत सेठ के घराने की खींच लूगा, पीछे से ये दोनों लड़के होश में आही के क्या करेंगे।

सच है, धूर्त और कुटिल लोगों की कार्रवाई का लखना बड़ाही दुर्घट है। कोई निराला ही तत्व है जिससे वे गढ़े जाते हैं। ऐसों की जेहरीली कुटिलनीति ने न जानिये कितनों का अपने पेच में ला जड़ पेड़ से उखाड़ डाला। इसलिये जो सुजान हैं वे ही उनकी कुटिलाई के दांव पेंच से बचे हुये अपनी चतुराई के द्वारा दूसरों को भी अन्धियारे गड्ढे में गिरने से रोक लेते हैं।

तेरहवां प्रस्ताव।

योऽर्थे शुचि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।

यह हम अपने पाठकों को प्रगट कर चुके हैं कि हमारे इस उपन्यास के मुख्य नायक दोनों बाबू बहुत सा फिजूल खर्च करते करते अब सकीर्णता में आने लगे। कहा है—"भक्ष्यमाणो निराधानं क्षीयते हिमवानपि" संचय न किया जाय और रोज उसमें से ले ले कर खर्च हो तो कुबेर का खजाना भी नहीं ठहर सकता तब बड़े सेठ हीरा चन्द की संपति कितनी और कै दिन चलती। जिस तालाब में पानी का निकास सब ओर से है, आना एक ओर से भी नहीं तो उसका क्या ठिकाना। बाबुओं को अब खर्च का तरद्दुद हर जून रहा करता था, और इसी चिन्ता में रहते थे कि किसी तरह कहीं से कुछ रकम हाथ लगे, अस्तु।

अनन्तपुर में नन्दू के मकान से सटा हुआ कच्चा पक्का एक दूसरा घर था; चूना पोती कबर के माफिक यह घर बाहर से तो बहुत ही रंगा चुंगा और साफ था पर भीतर से निपट मैला गन्दा और सब ओर से गिरहर था। अब थोड़ा इस घर के रहने वाले का भी परिचय दिया किये हमारे प्रबन्ध की शृङ्खला टूटती है। यह घर बाहर से जो ऐसा रंगा चुंगा और भीतर श्मसान सा शून्यागार था इसका कुछ और ही मतलब था और वह मतलब आपको तभी मालूम होगा जब आप मालिक मकान से पूरे परिचित हो जांयगे। मालिक मकान महाशय को आप कोई साधारण जन न

रखिये। फितनाअङ्गेजी और उस्तादी में यह बड़े २ गुरुओं का भी गुरू था। अनन्तपुर के सब लोग इसे उस्ताद जो कहा करते थे। हमारे पढने वाले नन्दू के चाल चलन और शील स्वभावसे भरपूर परिचित होचुके हैं, पर वह चालाकी में इसके पसगे में भी न था। नन्दू इसे चचा कहा भी करता था। सकलगुणवरिष्ठ हकीकत में यह चचा कहलाने लायक था। नाम इसका बुद्धदास था और जैनधर्म पालन में अपने को बड़े बड़े श्रावकों का भी आचार्य समझता था। स्वास लेने और छोडने में जीवहिंसा न हो, इसलिए रातों दिन मुह पर ढाढा बाधे रहता था, पर चित्त में कहीं दया का लेश भी न था। पानी चार बार छान कर पीता था पर दूसरे की थाती समूची की समूची निगल जाता था, डकार तक न आती थी। दिन में चार बार मन्दिर में जाता था पर मन से यही विसूरा करता था कि किस भांति कहीं से बिना मेहनत, बेतरद्दुद, डले का डला रुपया हाथ लग जाय। साथही यह भी याद रखने लायक है कि आप निवन्सी थे, आगे पीछे आपके कोई न था, कृपण इतने थे कि चार रुपये महीने में गुजर करते थे। जाहिरा में दस पाच रुपया पास रख घडी दो घडी के लिए टाट बिछाय बाजार में जा बैठते थे और पैसों की शराफी अपना पेशा प्रगट किये थे, पर छिपी आमदनी इसकी कई तरह की ऐसी थी कि उसका हाल कोई २ विरले ही जानते थे। अनन्तपुर में तो नन्दू ऐसे दोही एक इसके चेले थे, किंतु लखनऊ के चालाक और उस्तादों में इसकी धूम थी। भेस छिपाये दो एक परदेशी इसके फन के मुश्ताक टिके ही रहते थे। यह अपने को कीमियागर प्रसिद्ध किये था, पढ़ा लिखा एक अक्षर न था पर खुशनवीसी में ईश्वर की देन उस पर थी।

मानो इस फन को यह मा के पेट से ले उतरा था। किसी भाषा का कैसा ही बदखत या खुशखत लेख हो यह जैसे का तैसा उतार देता था। दस रुपये सैकडा इसकी उजरत मुकर्रर थी, अर्थात् दस्तावेज वगैरह सौ रुपये का हो तो उसकी बनवाई यह दस रुपया लेता था, दो सौ का होतो बीस, योंही सो सो पर दस बढ़ता जाता था। और बहुत से फन इसे याद थे पर उन सबों के जिकिर से हमें यहा कोई प्रयोजन नहीं है। बुढ दास शौकीन और तरहदारों में भी अपना अौवल दरजा मानता था। उमर इसकी ४० के ऊपर आ गई थी, दांत मुह पर एक भी बाकी न बचे थे, तौभी पोपले और खोडहे मुह में पान की बीडिया जमाय, सुरमे की घज्जियों से आख रग, केसरिया चन्दन का एक छोटा सा बिन्दा माथे पर लगाय, चुननदार बालाबरअगा पहन, लखनऊ के बारीक काम की टोपी या कभी कभी लट्टूदार पगडी बाध जब बाहर निकलता था तो मानो ब्रज का कधैया ही अपने को समझता था। होठ बडे मोटे, रग ऐसा काला मानों हब्श देश की पैदाइश का कोई आदमी हो, आख घुच्चू सी, गाल सुचके, डील ठेंगना, बाल खिचडी उस पर जुल्फ, गरदन कोताह, मुह घोडे का सा लम्बा, शैतानी और फसाद तथा काइयापन इसके एक २ अंग से बरसता था। यह सिप की गाठ अनन्तपुर का रहने वाला न था; थोडे दिनों से यहा आकर बसा था। कहा है–"समानशीलव्यसनेषु सख्यम्" नन्दू और यह दोनों एक से शील सुभाव के थे और नन्दू की इससे पटती भी खूब थी इसलिए अचरज क्या कि उसी ने इसे कहीं बाहर से बुला कर अपने घर के पास ही टिका लिया था। इसे नन्दू चचा कहता था इससे मालूम होता है

कदाचित् कोई दूर का रिश्ता भी इससे रहा हो। नन्दू भी जो चालाकी में पकता था, इस घात से इसे और टिकाये था कि इसके दूसरा कोई और था ही नहीं अन्त को इस वज्र कृपण का धन सिवा मेरे कौन पा सकता है ! जो हो एक रात को नन्दू ने आकर इसका किवाड खटखटाया, इसने चुपके से आय किवाड खोल दिया, दोनों भीतर चले गये और किवाड़ बन्द कर लिया। नन्दू बोला—"चचा, बडे बाबू ने आज आप को उसी मामिले के लिए याद किया है—आपकी उजरत कौडी ऊपर दिलवाऊँगा"। यह बोला "उजरत की कौन सी बात है मुझे तुम से या बाबू से किसी तरह पर इनकार नहीं है"।

चौदहवां प्रस्ताव।

बह बह मरै बैलवा बैठे खायं तुरङ्ग।

पाठक जन, आप लोगों को याद होगा हमारे इस किस्से के पहले प्रस्ताव का पहिला दृश्य एक घुडसवार था जो आधी रात के समय कागज का एक पुलिन्दा लिए आया था और दरवाज़े का फाटक खुलवाय पुलिन्दा दे चला गया था। हमारे पढनेवालों को अवश्य इस बात के जानने की रुचि हुई होगी कि यह कागज का पुलिन्दा क्या था और क्यों ऐसा तावडतोड मगाया गया।

हम ऊपर कह आये हैं सेठ हीरा चन्द का अनन्तपुर में एक बहुत पुराना घराना था। हीरा चन्द से पाच पुश्त पहले इसके पुरखों में से एक कोई मानिकचन्द नाम का, घर से

पाच कोस पर अपने ही नाम का एक गाव बसाय, बाग, बगीचा, कुआ, तालाब, रमने इत्यादि कई एक रमणीक सजावटों से इस स्थान को अत्यन्त मन रमाने वाला कर आप यहीं आय रहने भी लगा। उपरान्त इसके कई एक लड़के, लड़कियां, पोते, परपोते हुए और यह सब भांत रजा पुजा होकर संसार में भाग्यवानी की सीमा को पहुंच गया था, वल्कि बीच में हीरा चन्द के घराने की बड़ी अवतरी आ गई थी, यह तो हीरा चन्द ही ऐसा भाग्यवान् पुरुष हुआ कि पहले से भी अधिक इस घराने को चमका दिया। मानिकपुर वाले सेठों का तो कोई नाम भी न जानता था पर हीरा चन्द का विमल यश चहू ओर छाया था। जिस समय का हाल मैं लिखता हूं उस समय मानिक चन्द के घराने में बची बचाई पुरानी दौलत तो थोड़ी बहुत रह गई थी, पर उसका सुख विलसने वाला कोई न रहा। ७० वर्ष का एक बुड्ढा बच रहा, जैसे, किसी हरे भरे बाग के उजड़ जाने पर उसमें कटीले पेड़ का एक ठूठ बच रहे। मानिकपुर भी उजड़ कर कस्बे से एक छोटा सा पचास घर का पुरवा रह गया, सिवाय इस बुड्ढे के मानिक चन्द की लड़कियों के सन्तान में भी एक आदमी बच रहा था। नाम इसका मिट्ठू मल, मानो नहूसत और दरिद्रता का एक पुतला था। इस बुड्ढे के घर से अलग एक दूसरे कच्चे मकान में यह रहा करता था, शकल से महा दिहाती ग्रामीण मालूम होता था, न केवल सूरत ही शकल से यह दिहाती था, वरन शऊर और ढंग भी इसके सब दिहातियों के से थे। दस पांच बिगहे की खेती करता था और यही इसकी आजीविका थी। कभी २ अर्थपिशाच वह बुड्ढा भी इसकी कुछ सहायता कर देता था। रिश्ते में वह उसका भानजा

लगता था। नाम इस पद्यचित्त कृपण बुड्ढे का धनदास था। धन दास कुछ तो बुढापे के कारण, जब कि और सब इन्द्रिया शिथिल हो केवल तृष्णा और लोभ ही को विशेष बढा देती हैं और कुछ इस कारण से भी कि इस की वारी फुलवारी बिलकुल उजड गई थी ठठ सा अकेला आप ही बच रहा था लडके, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूक तापा था इसलिये इसका जी सब भाति बुझ गया था और कभी किसी बात के लिये हौसिला ही नहीं उमडता था, साप सा खाट बिछाये उसी सन्दूक के पास पडा रहता था, जिसमें इसके सब कागज, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रक्खे हुये थे सिवाय थोडी सी पुराने फैशन की फारसी के और कुछ पढा लिखा न था, न इसे कभी किसी सभ्य समाज में शरीक होने या अच्छे सभ्य लोगों से मिलने का मौका मिला था। बेईमानी या इमानदारी से जैसे बन पडे केवल रुपया जमा होता चला जाय, इसी को यह बडी पण्डिताई, बडी चतुराई, बडा धर्म समझे हुये था। इस दशा में य को भाव कहा से आ सकता है। न जानिये थाती पचा डाला था इन्हीं कारणों की पदवी बहुत सुघटित बोध होता था, एक एक अग पुलित और उ करता था।

[illegible]

इस लिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल मताल है उसे जैसे हो अपने कब्जे में लावें। चलती वार नन्दू भी इन के साथ हो लिया। दोनों का चोलीदामन का साथ था, भला यह क्यों कर बाबुओं को छोड़ अपनी चालाकी से चूकता और बाबू के भी इसके बिना कहां कल पड़ सकती थी। दो एक दिन तो धन दास बहुत ही बुरी हालत में रहा, लोग अंगुलियों पड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी; दो तीन दिन तो पड़ा रहा उपरान्त बोला भी और कुछ खाने के लिये इसने इच्छा प्रगट की। बाबू इसे चंगा होते देख मन में बड़े उदास हुये, सब उम्मीदें जाती रहीं और जो बात सोच रक्खा था एक भी न हो सकी; पर ऊपर से ऐसी लल्लो पत्तो और चुना चुनी करते जाते थे कि धन दास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोच रहा है और मेरे साथ कुछ खेल खेला चाहता है। इसके बाद भी अपनी दुरभिसन्धि छिपाने को बाबू दो एक दिन वहां रह कर धन दास से बिदा हुये और नन्दू को वहां ही छोड़ गये। भीतर भीतर इशारा तो कुछ और ही था पर ऊपर से धन दास के सामने नन्दू से कहा "नन्दू बाबू, मैं तो अब आऊंगा पर तुम चचा साहब की अच्छी तरह फिकर रखना। देखो, इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तद्बीर रखना। और धन दास से बोला "चाचा साहब क्या करूं मैं बड़ा लाचार हूं मेरे न रहने से कोठी तथा इलाकों का सब कारबार बन्द होगा। मैं नन्दू बाबू को छोड़े जाता हूं, यह मेरे बड़े रफीक हैं, आपकी सेवा टहल की सब फिकिर रक्खेंगे और किसी तरह की तकलीफ आपको न होने पावेगी। मैं घुड़सवार एक हलकारे को छोड़े जाता हूं जब आपको

लगता था। नाम इस पक्षचित्त कृपण बुड्ढे का धनदास था। धन दास कुछ तो बुढापे के कारण, जब कि और सब इन्द्रिय शिथिल हो केवल तृष्णा और लोभ ही को विशेष बढ़ा देता है और कुछ इस कारण से भी कि इस की सारी फुलवारी बिलकुल उजड़ गई थी ठुठ सा अकेला आप ही बच रहा था, लड़के, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूंक तापा था, इसलिये इसका जी सब भांति बुझ गया था और कभी किसी बात के लिये हौसिला हो नहीं उमड़ता था, सांप सा खाट बिछाये उसी सन्दूक के पास पड़ा रहता था, जिसमें इसके सब कागज, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रक्खे हुये थे। सिवाय थोड़ी सी पुराने फैशन की फारसी के और कुछ पढ़ा लिखा न था, न इसे कभी किसी सभ्य समाज में शरीक होने या अच्छे सभ्य लोगों से मिलने का मौका मिला था। बेइमानी या इमानदारी से जैसे बन पड़े केवल रुपया जमा होता चला जाय, इसी को यह बड़ी पण्डिताई, बड़ी चतुराई, बड़ा धर्म समझे हुये था। इस दशा में मनुष्य को उदार भाव कहां से आ सकता है! न जानिये कितनों की तो इसने थाती पचा डाला था इन्हीं कारणों से इसके लिये अर्थपिशाच की पदवी बहुत सुप्रटित बोध होती है। सत्तर वर्ष का हो ही गया था, एक एक अंग पलित और जीर्ण हो चले थे, रोगग्रसित रहा करता था। अचानक एक साथ ऐसा बीमार होगया कि बिलकुल खाट से लग गया और मालूम होता था कि दो ही एक दिन में इसका वारा न्यारा हुआ चाहता है। इसकी बीमारी की खबर बाबुओं को पहुंची। खबर पाते ही इन दोनों के जी में खलबली पड़ी। इस लिये नहीं कि बुड्ढा बीमार है चलकर उसकी कुछ सेवा टहल करें, या दवादारू की कुछ फिकर करें, बल्कि

इस लिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल मताल है उसे जैसे हो अपने कब्जे में लावें। चलती वार नन्दू भी इन के साथ हो लिया। दोनों का चोलीदामन का साथ था, भला यह क्यों कर बाबुओं को छोड़ अपनी चालाकी से चूकता और बाबू को भी इसके बिना कहा कल पड़ सकती थी। दो एक दिन तो धन दास बहुत ही बुरी हालत में रहा, लोग अंगुलियों घड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी, दो तीन दिन तो पड़ा रहा उपरान्त बोला भी और कुछ खाने के लिये इसने इच्छा प्रगट की। बाबू इन्हे चंगा होते देख मन में बड़े उदास हुये, सब उम्मीदें जाती रहीं और जो बात सोंच रक्खा था एक भी न हो सकी, पर ऊपर से ऐसी लल्लो पत्तो और चुना चुनी करते आते थे कि धन दास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोंच रहा है और मेरे साथ कुछ खेल खेला चाहता है। इसके बाद भी अपनी दुरभिसन्धि छिपाने को बाबू दो एक दिन वहा रह कर धन दास से विदा हुये और नन्दू को वहा ही छोड़ गये। भीतर भीतर इशारा तो कुछ और ही था पर ऊपर से धन दास के सामने नन्दू से कहा "नन्दू बाबू, मैं तो अब जाऊंगा पर तुम चचा साहब की अच्छी तरह फिकर रखना। देखो, इन्हें किसी तरह की तक्लीफ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तदबीर रखना। और धन दास से बोला "चाचा साहब क्या करूं मैं बड़ा लाचार हूँ मेरे न रहने से कोठी तथा इलाकों का सब कारबार बन्द होगा। मैं नन्दू बाबू को छोड़े जाता हूँ, यह मेरे बड़े रफीक हैं, आपकी सेवा टहल की सब फिकिर रक्खेंगे और किसी तरह की तकलीफ आपको न होने पावेगी। मैं घुड़सवार एक हलकारे को छोड़े जाता हूं जब आपको

किसी वात की जरूरत आ पड़े तुरन्त इसे भेज मुझे इत्तला देना"। यह कह बुड्ढे को सलाम कर वह वहा से विदा हुआ।

नन्दू जो चालाकी में पूरा उस्ताद था और अपने को इसमें एकता समझता था ऐसे ढग से रहा और ऐसी सेवा टहल कि कि धन दास का यह बडा विश्वसित हो गया यहा तक की इसने अपनी ताली कुञ्जी सब इसके सिपुर्द कर रक्खा। अपने पुराने नौकरों की भी वात न मान जो यह कहता वैसाही धन दास करने लगा। एक तो वूढा था दूसरे बीमारी के कारण चिरचिरा हो गया था नन्दू को यह एक बड़ी हिकमत हाथ लगी कि जब इसे किसी पर झुझलाते और चिड़चिड़ाते देखता तो इश्तियालक देने की भांति दो एक कोई ऐसी बात कह देता कि इसकी चिरचिराहट और चोगुनी बढजाती थी। जिसपर यह झुझला उठता था उसको मानो शामत आई, और इस झुझलाहट में वह चिल्लाता था, रोने लगता था यहा तक कि मूड भी पीट डालता था। ऐसे मौके पर नन्दू को अपनी खेरख्वाही जाहिर करने का मौका मिलता था। निदान यह बुड्ढा बिलकुल सठिया गया। होशहवास भी दुरुस्त न रहते थे। मृत्यु के दिन समीप होने के जितने लक्षण होने चाहियें सब इसमें आ गये। इस प्रकार के कृपण कदर्य-जीवन से जीने वालों का यही तो परिणाम होना है, जो मानो आदमी के भले बुरे होने की बडी भारी परख है। सुकृती मनुष्य की मरण अवस्था ऐसी सुख की होती है कि किसी को मालूम नहीं होता कि कब उसके चोला से जान निकल गई, आनन फानन पलक भजते भजते शरीर से उसके प्राण की यात्रा होती है। वही दुष्कृती, जैसा यह बुड्ढा था, महीनो तक बड़े शोक यातना और यन्त्रणा भोगते हैं पर प्राणवियोग शरीर से नहीं होता।

एक दिन रात को यह कहरता कहरता सो गया और इसके सब पुराने नौकर भी नींद के वश हो गये कि नन्दू ने ताली का गुच्छा, जो इसकी तकिया के नीचे रक्खा रहता था, धीरे से खींच वह सन्दूक जिसे धन दास अपना प्राण समझता था आहिस्ते से खोल, कागज का पुलिन्दा उसमें से निकाल लिया और सन्दूक फिर बन्दकर ताली वैसे ही तकिया के नीचे रख दिया। इसने पुलिन्दा उसी अहल्कारे को दिया और कहा "तुम अभी जाकर इस पुलिन्दे को बाबू साहब को दे आओ, पर खबरदार होशियार रहना, यह बड़े काम का कागज है, इसमें से कोई भी गिर जायगा तो बड़ा हर्ज होगा।" अहल्कारा सलाम कर पुलिन्दे को अपनी कमर में रख रवाना हुआ। नन्दू भी आकर चुपके सो रहा, पर अपनी इस अभिसन्धि में कृतकार्य होने की खुशी में देर तक इसे नींद न आई, सोचता था "लाखों की जायदाद मालमताल अब मेरे बाबुओं की बेखटखाले हाथ लग जायगी, बाबू से बहोरम मेरा ठहर गया ही है, तब क्या हमीं हम कुछ दिनों में देख पड़ेंगे। बहोरम क्या यह बिल्कुल माल मैं अपना ही समझता हूं, क्योंकि बाबुओं को तो मैंने अपने जाल में फंसा ही रक्खा है। बाबू के पास जो कुछ है उसके व्यय के कर्त्ता धर्त्ता सिवाय मेरे दूसरा है कौन। हा! हा! हा! मैं भी अपने फन में क्या ही उस्ताद हूं, कैसी अपनी धाक जमा रक्खी है कि अब बाबू के दरबार में मैं ही मैं हूं। उस उजड्ड पण्डित चन्दू ने हर बन्द चाहा, कितना ही फटफटाया, पर उसकी एक भी दाल न गली। इस तरह पर बाबुओं को मैंने अपनी मूठी में कर तो लिया। छिः! यह पण्डित भी अहमकों की जमात का एक नमूना देख पड़ा, वक़्तमीजी की यह बानगी है मानो शऊर

पन्द्रहवां प्रस्ताव।

"नाधर्मश्चरितो लोके सद्य- फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति॥ मनुः

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बाने वाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है, किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे धीरे पलटा खाय जड़ पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।

अनन्तपुर से आध मील पर सेठ हीरा चन्द का बनाया हुआ नन्दन-उद्यान नाम का एक बाग है। हीरा चन्द के समय यह बाग सच ही नन्दन वन की शोभा रखता था। सब ऋतु के फल फूल इसमें भरपूर फलते फूलते थे। ठौर ठौर लुहा घनी लता और कुञ्ज वृन्दावन की शोभा का अनुहार करते थे। सङ्गमर्मर की रविशों पर जगह जगह फौहारे जेठ बैसाख की तपन में सावन भादों का आनन्द बरसा रहे थे। एक ओर इस बाग के बड़ी लम्बी चौड़ी बारह दुआरी थी, जिसमें हीरा चन्द नित्य अपने काम काज से सुचित्त हो सन्ध्या को यहां आते थे। पण्डित, साधु अभ्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे और अपने चित्त के अनुसार सबों का थोड़ा या बहुत जो कुछ हो सकता सत्कार सन्मान करते थे। अस्तु, हीरा चन्द की बात उन्हीं के साथ गई अब उसको गाई गीत के समान फिर फिर गाने से लाभ क्या?

भीर समझ के चश्मे पर बड़ा भारी पत्थल का ढोंका रख दिया गया हो। खूबी यह कि कौड़ी कौड़ी मात हो रहा है फिर भी अब तक अपनी शरारत से बाज नहीं आता। मैं भी मौका तजवीज रहा हूं बचा को ऐसा फंसाऊंगा कि अब की बार जड़ पेड़ से उखाड़ डालूंगा और अनन्तपुर में कहीं इसका निशान भी न रह जायगा। मैंने एक बार पहले भी सन्दूक को खोला था ताकि देखूं इसमें क्या है, सिवाय और चीजों के उस पुलिन्दे को भी पाया, जिसमें पचास हजार के कई किता सिर्फ नोट के उसमें थे। दश हजार का एक किता तो मैंने अपने लिए अलग उड़ा रक्खा। और भी कई एक दस्तावेज उसमें हैं। यहां से चल कर मैं सबों को ठीक करूंगा। इसी लिए तो बुद्धदास को अपने घर के पास ही टिका रक्खा है और सब तरह की नाजबरदारी उसकी उठा रहा हूं। खासकर उस वसीयत को दुरुस्त करना है जिसमें बुड्ढे ने मिट्ठूमल के लिए कुछ इशारा कर दिया है। मिट्ठू ऐसे खूसट देहकानी को इतनी कसीर रकम मिलकर क्या होगी, इसे तो हम लोगों के हाथ में आना चाहिये। बाबू भी का रंग ढंग देख घर की सब रकम बड़ी सिठानी ने दाब रक्खा, दोनों बाबू मा के मरने के वादे पर कर्ज ले लेकर इन दिनों अपना काम चला रहे हैं। अब इतनी कसीर रकम एक साथ मिल जाने से कुछ दिनों के लिए सुबीता हो गया। खैर देखा जायगा इसमें शक नहीं आज मैं महीनों की कोशिश और तदबीर के बाद आखिर कामयाब हुआ।" इतने में उसे नींद आ गई और वह सो गया।

पन्द्रहवां प्रस्ताव।

"नाधर्मश्चरितो लोके सद्य- फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति॥ मनु"

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बोने वाले को थोड़े ही दिन के उपरान्त मिलने लगता है। किन्तु अधर्म का परिपाक धीरे धीरे पलटा खाय जड़ पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।

अनन्तपुर से आध मील पर सेठ हीरा चन्द का बनाया हुआ नन्दन-उद्यान नाम का एक बाग है। हीरा चन्द के समय यह बाग सच ही नन्दन वन की शोभा धरता था। सब ऋतु के फल फूल इसमें भरपूर फलते फूलते थे। ठौर ठौर गुहा घनी लता और कुञ्ज वृन्दावन की शोभा का अनुहार करते थे। सङ्गमर्मर की रविशों पर जगह जगह फौहारे जेठ बैसाख की तपन में सावन भादों का आनन्द बरसा रहे थे। एक ओर इस बाग के बड़ी लम्बी चौड़ी बारह दुआरी थी, जिसमें हीरा चन्द नित्य अपने काम काज से सुचित्त हो सन्ध्या को यहां आते थे। पण्डित, साधु अभ्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे और अपने वित्त के अनुसार सबों का थोड़ा या बहुत जो कुछ हो सकता सत्कार सन्मान करते थे। अस्तु, हीरा चन्द की बात उन्हीं के साथ गई अब उसको गाई गीत के समान फिर फिर गाने से लाभ क्या?

आगे के दिन पाछे गये हरि से कियो न हेत
अब पछिताये क्याभया चिड़िया चुनगई खेत

जिस फलवन्त धरती में अमृत रस वाले दाखफल और केसर उपजते थे उसी में काल पाय ऊंठकटारे और अनेक कटीले पेड़ जम आये तो इसमें अचरज की कौन सी बात है! काल चक्र की गति सदा एक सी रहे तो वह चक्र क्यों कहा जाय—"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

"गत: स कालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म वल्लिपु
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामोऽधुना वयम्"

बरसात का आरम्भ है। रिमझिम रिमझिम लगातार पानी की छोटी छोटी फूही ग्रीष्मसन्तापतापित वसुधा पै सुधादान के समान होने लगीं। काली काली घटायें सब ओर उमड़ उमड़ बरसने लगीं। मानो नववारिद घन उपरन स्थावर-जङ्गम जीव जन्तु मात्र को बरसात का नया पानी दे जीवनदान से जितने दानी और वदान्य जगत् में विख्यात हैं उनमें अपना अव्वल दरजा कायम करने लगे? या यों कहिये कि ये बादल जालिम कमबख्त जेठ माह के जुल्म से तड़पते, हांपते, पानी पानी पुकारने जीवों को देख दया से पिघल खिन्न हो आंसू बहाने लगे। नदी नाले उमड उमड़ अपना नियमित मार्ग छोड़ वैसा ही स्वतन्त्र बहने लगे जैसा हमारे इस कथानक के मुख्य नायक दोनों बाबू वेरोकटोक विवेक के मार्ग को छोड़, शरम और हया से मुंह मोड़, दुस्सङ्ग के प्रवाह में बह निकले। विमल जल वाले स्वच्छ सरोवर जिनमें पहिले हंस, सारस, चकवाक

कलध्वनि करते हुए विचरते थे, उनके मटीले गदले पानी में अब मेंढक वैसे ही टर टर करने लगे जैसा इन बाबुओं के दरबार में, जहा पहिले चन्दू सा मतिमान सुजान महामान्य था, वहा नन्दू तथा रग्घू सरीखे कई एक श्रोछे छिछोरे बाबू को दुर्व्यसन के कीचड में फंसाय आप कदर के लायक हुए। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण सबों का प्रकाश रात दिन मेघ से ढप मन्द पड जाने से जुगुनू कीडों की कदर हुई, जैसा दुर्दैव दलित भारत की इस आरत दशा में चारो ओर जब अज्ञान तिमिर की घटा उमड आई तो साधु, सदाचारवान्, सत्पुरुष कहीं दर्शन को भी न रहे, झूठे, पाखण्डी, दुराचारी, मक्कार पुजवाने लगे। असती जारिणी के कटाक्ष के समान सौदामिनी अभ्रपटल में चमक चमक छिपती हुई मानो इस बात को प्रगट करती है कि चरित्र में दाग लग जाना ऐसी ही बुरी बात है कि मुह छिपाना पडता है, अथवा यह बिजुली की चमक मानों बादलों के नेत्र हैं, जिनके द्वारा रात में अपने यार के घर जाती हुई अभिसारिका नायिका का मुख देख उन्हें यह भ्रम होता है कि निरन्तर की धारापात से चन्द्रबिम्ब आकाश से पृथिवी पर गिर गया स्यात् हाय! गजब हुआ, यही सोच में भर बडी जोर से चिल्लाने लगते हैं, यह गरजने का शब्द उन्हीं बादलों का चौंक कर चिल्लाना है। दिन में सूर्य का, रात में चन्द्रमा का दर्शन किसी किसी दिन घडी दो घडी के लिये वैसे ही घुणाक्षरन्याय सा हो गया, जैसा अन्यायी राजा के राज्य में न्याय और इन्साफ कभी कभी बिना जाने अकस्मात् हो जाता है। पृथ्वी पर एकाकार जल छा जाने से भूभाग का सम विषम-भाव, तत्त्वदर्शी शान्तशील योगियों की चित्तवृत्ति के समान, जाता ही रहा। हिन्दुस्तान में बरसात

का मौसिम बड़े आमोद प्रमोद का समझा जाता है, और उस समय जब इस उन्नीसवीं सदी की आसाइशें और आराम रेल, तार इत्यादि कुछ न थे सभी लोग बरसात के सबब अपना अपना काम काज छोड़ देने को लाचार हो जाते थे। यही कारण है कि जितने तिहवार और उत्सव सावन भादों के दो महीनों में होते हैं उतने साल भर के बाकी दस महीनों में भी नहीं होते। उद्यमी और कामकाजी लोग भी जिनको बिना कुछ उद्यम और परिश्रम किये केवल हाथ पर हाथ रख बैठे रहने की चिढ़ है और एक क्षण भी ऐसा व्यर्थ नहीं गवाया चाहते जिसमें वे अपने पुरुषार्थ का कुछ नमूना न दिखलाते हों वे भी वर्षा ऋतु में शिथिल और ढीले पड़ जाते हैं, तो आवारगी और व्यसन के हाथ में अपने को सौंपे हुये इन दोनों बाबुओं का क्या कहना! जिनको हर दम कोई नई दिल्लगी नये शगल की तलाश रहती है। मसल है "एक तो तितलौकी दूजे चढ़ी नीम"—,

"कपिरपि च कापिशायन-
मदमत्तो वृश्चिकेन संदष्टः।
अपि च पिशाचग्रस्तः
किम्ब्रूमो वैकृतं तस्य॥"

रईस और प्रतिष्ठित लोगों में बरसात के दिनों में बाहिरी ओर बाग बगीचों में आमोद प्रमोद का आम दस्तूर हो गया है। सुबीते वाले सभी अपने इष्टमित्रों को साथ ले बहुधा बगीचों में जाय नाच, रंग, खाना, पीना दो एक बार अवश्य

इराते हैं। ये दोनों बाबू तो जबसे बरसात शुरू हुई तब से रातो दिन बगीचे ही में जा रहे, कभी अठवें दसवें घड़ी दो घड़ी के लिये घर आते थे। एक दिन सांझ हो गई थी, घटा चारो ओर छाई हुई थी, राह घाट कुछ नजर न पड़ती थी, बगीचे के बाहर खेतों की मेड पर ठौर ठौर खद्योत माला हरी हरी घासों पर हीरा सी चमक रही थी, छिन छिन पर गरजने के उपरान्त काली काली घटाओं में दामिनी क्रोधित कामिनी सी दमक रही थी, सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था, केवल नववारिद समागम से प्रफुल्ल भेकमण्डली नाऊ की बरात के समान सब अलग अलग ठाकुर बने टर टर ध्वनि से कान की चैलियां झार रहे थे। एक ओर झींगुर अलग अपनी वाचाट वक्तृता से दिमाग चाटे डालते थे। पेड़ के पत्तों पर गिरने से वर्षा के जल का टप टप शब्द भी सुनाई देता था। कभी कभी पेड़ पर बैठे पखेरुओं का ओदे पख झारने का फड़ फड़ शब्द कान में आता था। बारह दुआरी भीतर बाहर सजी और झाड़ फानूसों से आरास्ता थी, रोशनी की जगमगाहट से चकाचौंधी हो रही थी, जशन की तैयारी थी। नन्दू, बुधा और हकीम तीनों बैठे प्याले पर प्याला ढलका रहे थे। दोनों बाबुओं की हुस्नपरस्ती में धूम थी, इस लिये तमाम लखनऊ और दिल्ली के हसीन यहां आ जुटे थे।

बुद्धू पाडे अफीम के झोंक में ऊंघता तलवार की मुठिया हाथ में कस के गेंड़ डेहुड़ी पर बैठा हुआ मानो बर्राय रहा था—"कहां कहां के चौपट चरमें इकट्ठे भये हैं, अस मन होत है कि इन हरामखोरन का अपने बस चलत तो काला पानी पठै देतेन। हाय! यह वही बाग और बारहदुआरी अहै जहां इनहिन बरसात के दिनन मा नित्य वेदपाठ और बसन्त पूजा

हात रही। अनेकन गुनी जनन केर भीर की भीर आवत रहैं और बड़े सेठ सबन केरे पूजा सन्मान करतु रहे, तहा अब भाड, भगतिये, रंडी, मुएडी पलटन की पलटन आय जुरे हैं। एक बार एक मुसलटा बारहदुआरी के भीतर घुस गया रहा तिस पर बड़े सेठ साहब सगर बारहदुआरी धोआइन रहा, यहाँ अब निरे मुसलमाने मुसलमान भरे हैं। ना जाने इन दोनों बाबुअन का का है गया। नन्दुआ का सत्यानास होय कैसा जादू कर दिहिस है कि चन्दू महाराज और सेठानी बहु हजार हजार उपाय कर थकी कोउनो भांति दोनों बाबू राह पर नहीं आवत। वा दिना बाबू बुद्ध दास का बुलाइन रहा, हम रात के वहिके घर गइन रहा पर पहका कुछ स्वाद न खुला, ओकर बाबू से मिस्टी पिस्टी अच्छी नहीं। ऊ तो बड़े कजाक और आलिया हैगा। हम ने अपने पढने वालों को इस सच्चे स्वामि भक्त का परिचय एक बार और दिलाना इस लिये उचित समझा कि यह मनुष्य भी हमारे इस किस्से का एक प्रधान पुरुष है, यह आगे बड़ा काम देगा इस लिये इसे हमारे पाठक याद रक्खें।

अब और एक नये आदमी का परिचय यहां पर देना मुनासिब जान पड़ता है क्योंकि ऐसे दो एक और लोगों को बिना भरती किये हमारे कथानक की श्रृङ्खला न जुडैगी। वयक्रम इस पुरुष का ३५ और ४० के भीतर था, नाम इसका पञ्चानन था। पञ्चानन के जोड का दिल्लगी बाज़ और रसीली तबियत का आदमी कम, किसी ने देखा या सुना होगा। यह मनुष्य चाल चलन का किसी तरह बुरा न था बल्कि चन्दू सरीखे शुद्धचरित्र की मैत्री के भरपूर लायक था और कसौटी के समय चालचलन की शिष्टता भी

इसमें चन्दू ही के टक्कर की थी, इसी से चन्दू से इसकी पटती भी थी और अनन्तपुर की छोटी सी बस्ती में दोनों का घर भी एक ही जगह वरन सटा सटा था। दोनों के घर के बीच केवल एक दीवालमात्र का अन्तर था। गम्भीरता या सकोच का यह जानी दुश्मन था। मुत्तसिफी तक की मुख्तारी एक मामूली दरें पर कर लेना, जो कुछ मिले उतने ही से अपने लड़के वालों को खाने पीने से सब भाँति प्रसन्न रखना, "न ऊधो के देने न माधो के लेने" और साँझ को निश्चिन्त लम्बी तान सो रहना केवल इतने ही को यह अपने जीवन का सार समझना था। अच्छा खाना अच्छा पहनने का इसे हद से जियादह शौक था, तेहवार और कचहरी में तातील का बड़ा मुश्ताक था। किसी के यहां ज़ियाफत में शरीक होने का इसे बड़ा हौसिला था। किसी के यहां कुछ काम पड़ने पर दावत खाना या उसको बेवकूफ बनाय ज़ियाफत दिलवाने में यह बहुत कम फर्क समझता था। सारांश यह कि इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि जिसमें कुछ हसी व दिलबहलाव हो वही करना। हर हाल में खुश रहना और दूसरों को खुश रखना इसका सिद्धान्त था। इसी से क्या छोटे, क्या बड़े सब उमर के लोगों से यह मिलता था और उचित तथा योग्य बरताव से सबों को प्रसन्न रखता था। जिस तरह अपने हम-उमर वालों से मिलता था उसी तरह कम उमर वाले लड़कों से भी मिल उनको राजी कर देता था। वरन इसके मसखरे-पन से बूढ़े लोग भी खुश रहते थे और कोई इसे बुरा न कहता था। यह बात तो कभी इसके मन में आती ही न थी कि ऊंचे पद से और रुपये के कारण मनुष्य की प्रतिष्ठा और इज्जत में कुछ अन्तर आ सकता है। इस लिए जहां कहीं

कुछ सुटकी लेने का अवसर मिलता था यह बिना कुछ बोले नहीं रहता था, चाहो वह आदमी कौडी कौडी का मुहताज हो या करोडपती क्यों न हो। ससार में यदि किसी से दबता था, या किसी की बुजुर्गी करता था तो केवल चन्द्र शेखर की। पञ्चानन के मन में चन्द्र शेखर का ऐसा रोब जमा हुआ था जिसे ख्याल कर अचरज होता था। यद्यपि चन्दू से भी कभी कभी यह दिल्लगी छेड बैठता था किन्तु दो एक गम्भीर विचार की भावना कभी को कुछ देर के लिए इसके मन में अवकाश पाती थी तो चन्दू ही के बार बार की नसीहत और उपदेश से। मसखरापन का बर्ताव यह साधारण रीति पर सब के साथ रखता था किन्तु मन में सोंचता था कि हम बडे गौरव के साथ लोगों से बर्तते हैं। इस तरह यह लोगों के बीच अपने को खिलौना बनाये था सही, पर सबों का सेवक और सब से छोटा अपने को मानता था। सर्वसाधारण में यह परोपकारी विदित था और अपने इख्तियार भर जो किसी का कुछ भला हो सके तो उससे मुह नहीं मोडता था। घमण्ड का इसमें कहीं लेश भी न था, सूरत भी भगवान् ने इसको ऐसी गढी थी कि इसे देख हसी आती थी। बडी लम्बी नाक, नीचे को झुके हुये छोटे छोटे मोछे, पस्त कद, पेट के ऊपर दोनों खड्डेदार छाती जैसा किसी गहरी नदी के ऊपर आगे की ओर झुका हुआ कगारा हो। बाल सुफेद हो चले थे पर जुल्फे सदा कतराये रहता था। अस्तु आज के जलसे में यह भी शरीक था। वहा हुमा को देख यह बोला "बाबू ऋद्धि नाथ, तुमने ऐसा चुम्बक पत्थर अपने पास रख छोडा है कि किस पर इसकी कोशिश का असर नहीं पहुँच सकता? ठीक है ऐसी सोने की चिडिया आपके हाथ

लगी है-तभी तो आपने हम लोगों को बिलकुल भुला दिया।"

ऋद्धिनाथ-खैर, गड़े मुरदे न उखाड़िये बतलाइये अब आप लोगों की क्या खातिरदारी की जाय (जूही का एक एक गजरा सबों के गले में छोड़) चलिये, आप लोगों को बाग की सैर करा लायें (एक बड़ी भारी सन्दूक दो कुलियों के सिर पर लदाये हुये रघ्घू को दूर से आता देख) लाओ लाओ अच्छे वक्त से लाये।

सब लोग—"यह क्या है? यह क्या है?" (सन्दूक खोल सब लोग एक २ बाजा उठा लेते हैं)—वाह रे! रघ्घू महराज, अच्छी जुल यह तुहफा तुम लाये और क्या हिसाब से लाये कि डेढ़ कोड़ी बाजे और यहां डेढ़ ही कोड़ी बाजे के बजवइये भी।

नन्दू—(ऋद्धिनाथ से) बाबू साहब, हमने कहा था बाजे हरगिज जियादह न होंगे बल्कि हुमा का हाथ फिर भी बाजा से खाली ही रहा।

पञ्चानन-अच्छा आप लोग अपना अपना बाजा ले चुके हों तो हम "प्रोपोज" करते हैं कि हुमा, हम सब लोग, बाजा बजाने वालों की बैंडमास्टर की जाय।

नन्दू—मैं आपके इस प्रोपोजल को सेकण्ड करता हूं। (मन में) हुमा या ये दोनों बाबू सब इस वक्त मेरे कब्जे में हैं, हुमा में हुमापन पैदा करने वाला भी मैं ही हूं। आज यह पुराना चण्डूल पञ्चानन अच्छा आ फंसा। यह उस गंवार पण्डित का जिगरी दोस्त है। अब भी मेरे दल में आज आ शरीक हुआ इस बात की मुझे बड़ी खुशी है। बुद्ध दास के

जरिये मैंने जो कार्रवाई की थी उसमें भी मैं भरपूर काम याब हुआ, सच है; ऐब करने को भी हुनर चाहिये।

धुद्धू पांडे अफीम के झौंक में एक बारगी चौंक पड़ा और अपने सामने पुलिस के दो आदमियों को बात चीत करते देख चौंकिआ हो पूछने लगा "तुम कौन हो ? किसके पास आये हो ?"

पुलिस—सेठ हीरा चन्द के पलीअहद ऋद्धिनाथ व नन्दू व बुद्धदास तीनों कहा हैं ? उनके नाम का वारेंट है तीनों फौजदारी सिपुर्द हुये हैं। साथ हथकड़ी के तीनों को अदालत मे हाजिर करने का हुक्म हमें है।

धुद्धू—(मन में) हमने तो पहले सोचा था कि इन चौपटहों का साथ हमारे बाबू को किसी दिन खराब करेगा। जो बात आज तक इस घराने में कभी नही हुई उसकी नौबत पहुंची तो अब बाकी क्या रहा। सच है बुरे काम का बुरा अजाम। देखिये आगे अब और क्या क्या होता है।

सोलहवां प्रस्ताव।

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।

"मेरे मन कुछ और है कर्ता के ... ।"

सब लोग अपनी अपनी पसन्द ... आ प्रमोद में लगे हुये थे। एक ओर था, दूसरी ओर वो छक्के का ... और सरोद का ...

आशिकनन झूलने-झूल रहे थे कि अचानक इस खबर के जाहिर होते कानो कान सब आपस में कानाफूसी करने लगे। एकबारगी सन्नाटा छा गया। नन्दू का चेहरा जर्द पड़ गया। वहां से निकल जाने की तदवीर सोचने लगा। दोनों बाबू भी घबड़ा गये और इस ख्याल में थे कि नन्दू उनका दिली खैर-ख्वाह है, अपने ऊपर सब ओढ लेगा, इन दोनों पर आंच न आवेगी। इधर नन्दू इस फिकिर में लगा कि जिस इलजाम पर वारंट आया है वह इन बाबुओं पर थाप दें तो हम साफ बरी हुई। सच है "आपत्सु मित्र जानीयात्" और इसी पत्र में लगा कि किसी तरह से चपत हों। अस्तु और सब लोग किसी न किसी बहाने वहां से खिसकने लगे पर नन्दू की कोई घात निकलने की नहीं लगती थी। इतने में घर से एक दूसरी खबर आई—"सरस्वती बहुत बीमार हो गई है, बड़ी सांस चल रही है, जल्दी घर चलो।"

छोटे बाबू की दो वर्ष की लड़की सरस्वती दोनों बाबुओं को बहुत हिली थी। घर में कोई छोटा लड़का न रहने से सब उसे बहुत प्यार करते थे, और वह घर भर की खिलौना थी। बाबू को दोचन्द तरद्दुद में पड़े देख सब लोग बड़े फिकिर में हुये, किन्तु नन्दू के आकार और चेष्टा से मालूम होता था कि इसे बाबुओं के साथ कोई सहानुभूति नहीं है केवल अपने बचाव के प्रयत्न में अलबत्ता लग रहा है। पचानन, जो कभी बाबुओं के किसी जलसे और नाच रंग में आज तक शरीक न हुआ था, और बाबू के दिली दोस्तों से इस की जियादह रब्त जब्त न रहने से अच्छी तरह उनके गुप्त चरित्र और छिपे चाल चालन से वाकिफ न था, नन्दू की उस समय की दगाई से अचरज में आया। यद्यपि पचानन तरद्दुद और

फिकर से कोसों दूर हटता था पर इस समय बाबुओं को अत्यन्त उदास, व्याकुल और चिन्तामग्न देख यह भी सन्नाटे में आ गया। कुछ इस कारण भी कि चन्दू का जिसे यह सब से अधिक मानता था सेठ के घराने से बहुत लगाव समझ दोनों के साथ इसे हमदर्दी हो आई, नन्दू पर इसे क्रोध भी आया कि यह धूर्त नमकहराम इस मुसीबत और चक्रकुलिश से किसी तरह रिहाई न पा सके और इसके फसाने की फिकिर में हुआ। पचानन मुन्सिफी तक की वकालत की सनद हासिल किये था इस लिये कानून की बारीकियों को भी भरपूर समझता था। नन्दू को बातों में फसाय बाबुओं को आंख के इशारे से बाग के पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निकाल दिया।

पंचानन-(नन्दू से)-बाबू नन्दलाल, आप ऐसे सयाने कौआ इन बगुलों के दल में कैसे फसे? आप को तो अपनी चालाकी का दावा था। "क्या दाम फंसा कफस में यह पुराना बुलबुल-लगी गुलशन की हवा दुम का हिलाना गया भूल"। सच है, सयाना कौआ जरूर गलीज खाता है। खैर, अब बतलाओ उस्तादों को क्या नजर करोगे हम इसमें पैरवी कर तुम्हें अभी इस मुसीबत से रिहा करें।

नन्दू—आप यकीन न लावेंगे मेरा इसमें कोई कुसूर नहीं है, इन बाबुओं ने मुझे भी फंसाय खराब किया।

पचानन—जी! आप ठीक कह रहे हैं। भला किसे शामत सवार है कि आप की बात पर यकीन न लावे। हम क्या हमारे बाप दादा अपने अपने वक्त में सब आप पर यकीन लाये हुये थे। वल्लाह, ऐसे नये नबी पर जो यकीन न लाया तो कौन दूसरे पैगम्बर आवेंगे जो हम ऐसे गुनहगारों का

गुनाह माफ करेंगे। हाल में हमारे प्रपितामह की भेजी हुई हमारे नाम की एक चिट्ठी आई है कि बाबू नन्द लाल, जो कहें उसमें एक शोशा, भी गलत न समझो। तब भला मुमकिन है कि आप की बात का यकीन न करें ?

नन्दू—आप तो ठट्ठों में उड़ाते हैं, यह मौका दिल्लगी का नहीं है।

पचानन—जी नहीं, दिल्लगी की इसमें कौन सी बात है, उस वक्त दिल्लगी अलबत्ता थी जब खूब गुलछर्रे उड़ते थे। खैर बाबुओं के बचाव की सूरत बिलफेल किसी न किसी ढग से हो जायगी। बाबू दोनों चपत भी हो गये, अब आप अपनी कहिये ?

नन्दू—(सब ओर देख) (स्वगत) हाय ! बाबू क्या चले गये तो अब यह सब बला हमी को सहना पड़ेगा। पचानन चालाकी में हम से भी दूना जाहिर होता है और हमको फसाने के लिए इसने मन में तय कर लिया है तो अब हमारा निस्तार कठिन मालूम होता है। खैर, अब इसी की खुशामद करें (प्रगट) बाबू पचानन, आप चाहें तो मुझे भी यहा से निकाल सकते हैं मैं आप का बड़ा एहसानमद हूगा।

पचानन—आप कुछ सदेह न करें, मैं आप की भरपूर खबर लूगा (वारंट वालों को बुलाकर) बाबू ऋद्धिनाथ तो यहा नहीं हैं और यहा आये भी नहीं। बाबू नन्द लाल अलबत्ता हाजिर हैं इन्हीं से बुद्ध दास का भी पता आपको लग जायगा। (नन्दू से) बाबू नन्द लाल अब कहिये जो कुछ आपको कहना हो, बुद्ध दास के गिरफ्तारी के जिम्मेवार भी आपही हैं। (दारोगा से) दारोगा साहब, बाबू नन्द लाल बड़े रईस

हैं इनके साथ किसी तरह की रियायत हो सकती हो तो मैं शिफारिस करता हूं कर दीजिये। क्योंजी बाबू नन्द लाल, यही आप का मतलब न था कि मैं अपनी ओर से आप के लिये न चूकूं? खैर, मैं अब जाता हूँ दारोगा साहब और आप दोनों आपस में यहां निपटते रहियें।

सत्रहवां प्रस्ताव।

अपना चेता होत नहिं प्रभु चेता तत्काल।

पचानन नन्दू को उसी बाग में पुलिस के दारोगा से मिलाय आप चपत हुआ। दारोगा अपने ढग पर था कि इससे कुछ पुछावें भी और बात ही बात में इससे कबुलवा भी लें कि "मैं कुसूरवार हूं"। इधर नन्दू अपने ढग पर था कि दारोगा को जरा भी उस बात की टोह न लगे जिसके लिए वारँट आया है और फसे तो हम और बाबू दोनों इसमें शामिल रहें। बाबू भी शरीक रहेंगे तो मुकद्दमे की भरपूर पैरवी की जायगी। मैं अकेला पड़ गया तो बेमौत की मौत मरा।

नन्दू—(मन में) पचानन का यहां से चला जाना मेरे हक में निहायत मुजिर हुआ। बेशक मैंने गलती की जो इस अपनी जमात में शरीक किया। मैंने कुछ और सोचा यहां कुछ और ही बात हो गई। यह तो मैं जानता था कि यह उसी चन्दू का दोस्त है लेकिन मैंने समझा कि यह ठठोल, दिल्लगी बाज, मुफ्तखोरा है, हमेशा अपने को खुश रखना किसी दूसरे को फसाय दिल्लगी देखना, और हमेशा आराम से जिन्दगी

कारना इसका मामूला है, इसी से मैंने अपनी जमात में इसे बुलाया भी, पर इस वक्त की कार्रवाई से मैं इसे पहचान गया। यह चन्दू का निहायत सच्चा दोस्त है, चालाक तो पचानन बेशक है किन्तु बड़ा भारा बेलौस और सच्चा आदमी है। जान पड़ता है यह मेरे आमालों को जानता है क्योंकि अब मैं ख्याल करता हूं तो इसे छनक मेरी ओर से तभी से थी जब से इसने यहां कदम रक्खा, क्या ताअज्जुब यह वारेन्ट भी चन्दू और पचानन दोनों की सलाह में आया हो। ख़ैर, यहां तो मैं इस मरदूद दारोगा से किसी भांति निपटे लेता हूँ पर मेरे घर पर मेरी गैरहाजिरी में यह पचानन और चन्दू दोनों मिल कोई फसाद बरपा करेंगे कि मुझे ज़रूर फंस जाना पड़ेगा। बुद्धदास का भी नाम इस वारंट में है, उसे बिल्कुल इसकी ख़बर नहीं है, उसको भी चन्दू तके हुये हैं। बाबू को तो यह किसी न किसी तदबीर से बचा लेगा, यह मुसीबत मुझे और बुद्ध दास दोनों को भुगतना पड़ेगा। ख़ैर तो अब इसे टटोलें, देख यह किसी तरह मेरे चंगुल में आ जाये तो बहुत अच्छा हो (प्रकाश) हुजूर, मैं गरीब आदमी हूं और सब तरह पर बेकुसूर हूं, मैं तो जानता भी नहीं यह क्या बात है। हां अलबत्ता इन बाबुओं का मेरा दिन रात का साथ है और अब मेरी इज्जत हुजूर के हाथ है, मुझे आपकी ख़िदमत करने में भी कोई उज्र नहीं है। मेरी जैसी औक़ात है बाहर नहीं हूं।

दारोगा—(मन में) मैं इस बदमाश को ख़ूब जानता हूं, इसमें शक नहीं इन बाबुओं को इसी ने खराब किया है, बाबुओं का क्या! इसने न जानिये कितने रईसों को बिगाड़ डाला। इस मूज़ी को तो मैं बहुत दिनों से तके था, कई बार मेरे चंगुल में आया पर अपनी चालाकी से बचता चला गया

अच्छा पहिले इसे टटोले तो इसमें कहाँ तक दम है। मुझे पूरा विश्वास है यह सब शरारत इसी की है । पर तो भी इससे पता लग जायगा कि इन बाबुओं की कहा तक इसमें दस्तन्दाजी है और कौन कौन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हैरतअंगेज युद्ध दास की भी फिकिर कर रक्खा है। सेठ हीरा चन्द की शिराफत का ख्याल कर इन बाबुओं पर मुझे भी रहम आता है पर इन बदमाशों को तो हरगिज न छोड़ूगा। (प्रकाश) कहिये आप क्या कहते हैं, इज्जत तो इस नाजुक जमाने में, मैं हू या आप हों, बची रहना खुदा के हाथ में है, इसी लिए अकिलमन्द लोग फूक फूक पाव रखते हैं। मसल है "साच को आच क्या," अगर आप इसमें हैं नहीं तो डर किस बात का। कर नहीं तो डर क्या, अदालत इन्साफ के लिये है, वहा दूध का दूध पानी का पानी छान बीन अलग अलग कर दिया जाता है, आप बेफिकिर रहैं, कुसूर नहीं किया तो तुम्हारा कुछ न होगा।

नन्दू—जी हां माफ कीजिये आपकी बात कटती है, अदालत में इन्साफ होता है यह आप नाहक कह रहे हैं, उलटे का सीधा सीधे का उलटा वहा हमेशा होता है, इन्साफ तो ऐसाही, कभी साजनादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपया की है, अदालत ही पर क्या रुपये से क्या नहीं होता। खैर हुजूर से मैं तकरीर नहीं किया चाहता, आप जो कहें मैं उसे अंगीकार किये लेता हू।

दारोगा—(मन में) बुराइयों के करने में इसका जहुवा खुला है, अदालत ऐसे ही ऐसों की करतूत से बिगडती जाती है, अकसर रुपये के जोर से यह अब तक बचता चला आया इसी से इसके दिमाग में यह बात समाई हुई है कि, अदालत

रुपये की है, खैर तुम बचा हमी से ठीक लगोगे (प्रगट) "मुझे यकीन कामिल होगया कि तुम जरूर इसमें कुसूरवार हो, वह कोई दूसरा खफीफ मामिला रहा होगा जब तुम रुपये खर्च बच गये। जानते हो यह कैसा टेढा मुकद्मा है, जनाब, ये जाल के मुकद्मे हैं, इसमें चौदह और डामिल की सजायें हैं। ऐसे ऐसे गन्दे ख्यालों को दूर रखिये कि आइलत में उलटे का सीधा और सीधे का उलटा होता है, अदालत इन्साफ के लिये है, ऐसे लोगों ने जैसे आप हैं अलबत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है।"

चौदह और डामिल का नाम सुन इसका चेहरा जर्द पड गया, नस नस ढोली हो गई, जो समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊंगा और पुलिस को भी अपना तरफदार कर लूंगा वह सब उम्मीदें जाती रही, गिडगिडा कर बोला — "अच्छा तो अब मेरे निस्तार की क्या सूरत हो सकती है आप निश्चय जानिये मैं बेकुसूर हूं, बाबू का मेरा दिन रात का साथ है इससे आपको मेरी ओर भी शक है और मैं भी खराबी में पडता हूं"।

दारोगा—जी हां ठीक है, आप बिलकुल बेकुसूर हैं। तुम समझते हो मेरे मामले छिपे हैं। जनाब, आपही ने बाबू का भी खराब किया। आप ऐसे लोगों का ऐसे ऐसे मुकद्मों से निस्तार होना मानो आवारगी और बुराई के फरोग पाने के लिए इशतियोलक देना है। अच्छा, आप तो अब रवाना हों उन दोनों की भी फिकिर की जायगी। नकीअली! लो तुम इन्हें ले चलो मैं अब बाबू और बुद्धदास के लिए जाता हूं। मैं बाबू को तो मैं जानता हूं, बुद्धदास का पता क्योंकर लगाऊँ? बाबू नन्द लाल आप बतला सकते हैं बुद्ध दास कहा मिल सकेगा। मैं समझता हूं बुद्धदास का नम्बर तुमसे बहुत

अच्छा पहिले इसे टटोलें तो इसमें कहां तक भर्म है। मुझे पूरा विश्वास है यह सब शरारत इसी की है। पर तौ भी इससे पता लग जायगा कि इन बाबुओं की कहा तक इसमें दस्तन्दाजी है और कौन कौन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हैरतअंगेज बुद्ध दास की भी फिकिर कर रक्खा है। सेठ हीरा चन्द की शिराफत का ख्याल कर इन बाबुओं पर मुझे भी रहम आता है पर इन बदमाशों को तो हरगिज न छोडूंगा। (प्रकाश) कहिये आप क्या कहते हैं, इज्जत तो इस नाजुक जमाने में, मैं हू या आप हों, बची रहना खुदा के हाथ में है, इसी लिए अकिलमन्द लोग फूक फूक पाव रखते हैं। मसल है "साच को आच क्या," अगर आप इसमें हैं नहीं तो डर किस बात का। कर नहीं तो डर क्या, अदालत इन्साफ के लिये है यहा दूध का दूध पानी का पानी छान बीन अलग अलग कर दिया जाता है, आप वेफिकिर रहें, कुसूर नहीं किया तो तुम्हारा कुछ न होगा।

नन्दू—जी हां माफ कीजिये आपकी बात कहती है, अदालत में इन्साफ होता है यह आप नाहक कह रहे हैं, उलटे का सीधा सीधे का उलटा वहा हमेशा होता है, इन्साफ तो ऐसाही, कभी साजनादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपया की है, अदालत ही पर क्या रुपये से क्या नहीं होता। सैर हुजूर से मैं तकरीर नहीं किया चाहता, आप जो कहैं मैं उसे अंगीकार किये लेता हू।

दारोगा—(मन में) बुराइयों के करने में इसका जहया खुला है, अदालत ऐसे ही ऐसों की करतूत से बिगडती जाती है, अकसर रुपये के जोर से यह अब तक बचता चला आया इसी से इसके दिमाग में यह बात समाई हुई है कि अदालत

रुपये की है, खैर तुम बचा इसी से ठीक लगोगे (प्रगट) "मुझे यकीन कामिल होगया कि तुम जरूर इसमें कुसूरवार हो, यह कोई दूसरा खफीफ मामिला रहा होगा जब तुम रुपये खर्च बच गये। जानते हो यह कैसा टेढा मुकद्मा है, जनाब, ये जाल के मुकद्मे हैं, इसमें चौदह और डामिल की सजायें हैं। ऐसे ऐसे गन्दे ख्यालों को दूर रखिये कि आदलत में उलटे का सीधा और सीधे का उलटा होता है, अदालत इन्साफ के लिये है, ऐसे लोगों ने जैसे आप हैं अलबत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है।

चौदह और डामिल का नाम सुन इसका चेहरा जर्द पड़ गया, नस नस ढीली हो गई, जो समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊंगा और पुलिस को भी अपना तरफदार कर लूंगा यह सब उम्मीदें जाती रहीं, गिड़गिड़ा कर बोला — "अच्छा तो अब मेरे निस्तार की क्या सूरत हो सकती है आप निश्चय जानिये मैं बेकुसूर हूं, बाबू का मेरा दिन रात का साथ है इससे आपको मेरी ओर भी शक है और मैं भी खराबी में पड़ता हूं"।

दारोगा—जी हां ठीक है, आप बिलकुल बेकुसूर हैं। तुम समझते हो मेरे आमाल छिपे हैं। जनाब, आपही ने बाबू को भी खराब किया। आप ऐसे लोगों को ऐसे ऐसे मुकद्मों से निस्तार होना मानो आवारगी और बुराई को फरोग पाने के लिए इशातियोलक देना है। अच्छा, आप तो अब रवाना हों उन दोनों की भी फिकिर की जायगी। नकीअली ! लो तुम इन्हें ले चलो मैं अब बाबू और बुद्धदास के लिये जाता हूं। खैर बाबू को तो मैं जानता हूं, बुद्धदास का पता क्योंकर लगाऊँ ? बाबू नन्द लाल आप बतला सकते हैं बुद्ध दास कहां मिल सकेगा। मैं समझता हूं बुद्ध दास का नम्बर तुमसे बहुत

चढ़ा चढ़ा है, बल्कि उसी के भरोसे तुम्हें भी ऐसे ऐसे कामों के लिए हिम्मत होती है।

नन्दू—मैं सच कहता हू बुद्ध दास से मुझे कोई सरोकार नहीं है, सिर्फ इतना ही कि वह भी कभी कभी बाबू साहब के यहा आया जाया करता है। मुझे तो यह भी खबर नही है कि वह कौन सा काम है जिसके लिये आप मुझे और बुद्ध दास को इस वारंट में गिरफ़्तार करते हैं।

दारोगा—जी हा आप कुछ नहीं जानते, आप तो कोई मुनस्सि हैं, खैर मुझे इससे क्या गर्ज है, मुझे तो अदालत के हुकम का तकमीला करने से गर्ज है। आप वहीं जाकर अपनी सफाई कर लेना। लो इसके हाथ में हथकड़िया छोड़ इसे लेजाओ, मैं अब उन दोनों के तलाश में जाता हू।

अठारहवां प्रस्ताव।

पानी मे पानी मिलै मिलै कीच मे कीच

सबेरे की नमाज से फारिग हो अफीम के नशे के झोंक में ऊघते हुये कोतवाल साहब कुरसी पर बैठे सोच रहे हैं "कोतवाली का भी क्या ही नाजुक काम है। उधर शहर के आवारा और बदमाशों को दाब में रखना और उनके जरिये मतलब भी निकालना, इधर रईसों पर भी चाप चढ़ाये रहना, ऐसा कि जिसमें कोई उमड़ने न पावे। जन्ट से मैजिस्ट्रेट तक सब को अपनी कारगुज़ारी से खुश रखना और उनके खयाल में सुर्खरुई हासिल किये रहना कितना मुशकिल काम है। सुबह से शाम तक ऐसे ऐसे पेचीदह झगड़े आ पड़ते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। उस दिन उस जौहरी के इस

हजार के जवाहिरात उड गये। मुझे मालूम है जिन लोगों का यह काम है, पता भी मैंने लगा लिया है पर जौहरी मरदूद बडा कजाक काइया है एक झमी नहीं गला चाहता और बातों ही बात में काम निकाला चाहता है। मैंने सोंच रक्खा है आधे पर मामिला तै करेगा तो खैर बेहतर, नहीं बचा कुल से हाथ धो बैठेंगे। ५०० रुपये रोज बिना पैदा किये दातुन करना हराम है, अच्छा, फिर हमारा गुजारा भी तो किसी तरह होना चाहिये। बडे बड़े नौवाबों का जो खर्च न होगा वह हम अपने जिम्मे बाधे हैं। १० रुपये रोज बी वजो को जरूर ही चाहिये, किले सी बडी भारी इमारत खुदा छेडे हुये हैं जिसमें लखों रुपये सोख गये। हमनिवाले दस पाच दोस्त दस्तरखान के शरीक न हों तो नाम में फर्क पडे। चार २ फिटन, कोतल सवारी के घोडे वगैर का सब खर्च कहा से आवे, आखिर अल्लाहताला को हमारी भी तो फिकिर है। रोज नया शिकार न भेजें तो इतना बडा अटाला कैसे पार हो"—(पीनक से जग) कोई है। अबे ओ फहमुआ (थोडा ठहर) अबे ओ फहमुआ (थोडा ठहर) अबे ओ फहमुआ मर गया क्या।

फहमुआ—हा साहब हे आपडे (आल मींजता हुआ नींद में भरा आता है)।

कोतवाल—हरामजादा अभी तक पडा पडा सोताही था, तू अपनी इस आदत से, बाज न आयेगा। बीसों मरतबा कह चुके तुझे होश नहीं आता, समझे रह खाल खिचवा लूगा।

फहमुआ—हुजूर माफ करें कसूर भा, अब आगे से ऐसा न करिहौ—(हुक्का भर सामने लाय रख देता है)।

(कोतवाल हुक्के की निगाली होठों के नीचे दाब पीनक में आय फिर मन में) इसमें कुछ शक नहीं कोतवाली का ओहदा भी एक छोटी सी बादशाहत है मगर हुक्काम जिल्ह अपने चगुल में हों तब। पहले जो साहब थे उन्हें तो मैंने खूब साट रक्खा था, शहर के इन्तजाम का कुल दारमदार साहब ने मुझ पर छोड रक्खा था, जो चाहता था सो करता था। क्या कहें साहब हमारे बडे सखी के आदमी थे, लोगों ने बहुतेरा मेरे खिलाफ कान भरा पर उन्होंने एक न सुना। जो बाफ़्त मुझे उनके जमाने में हो गई वह अब काहे को होना है। नया कलट्टर बडा सख्त मिजाज मालूम होता है, आदमी यह बेलौस जरूर है, मुझे उम्मीद नहीं होती कि यह किसी तरह मेरे चगुल में आ सकेगा। बेलौस और बडा मुन्सिफ मिजाज है, रैयत की भलाई का भी उसे बहुत ख्याल है, खैर देखा जायगा। कल से एक नया शिकार हाथ आया है, तीन वारंटगिरफ्तारी, अदालत से, मेरे पास आये हैं, इस वारंट में सेठ हीराचन्द के घराने के लोग शामिल हैं। मुकद्दमा यह ऐसा हाथ आया है कि खूब ही पाकेट गरम होने का मौका मिलेगा, ५ तोडे भी हाथ न आये तो कुछ न हुआ। इधर कई दिनों से बिलकुल खाली जाता था, अल्लाह ने एक साथ भारी रकम भेज दी। कल रात बी बन्नो कर्डफाविजली और झूमड के लिये झगड रहीं थीं, यह रकम गोया उसी के नसीब से हाथ आवेगी। दारोगा सुजानसिंह और नकीअली कानस्टेबिल को मैंने इसके लिये तैनात किया है, मालूम नहीं क्या हुआ। (पीनक से जग, एक फूंक हुक्के की ले)—अरे फहमुआ नामाकूल कैसी तम्बाकू भर लाया है, कलेजा तक झुलस गया। अहमक तुम

से हजार मरतबा कहा गया तू अपनी आदतों से वाज न आयेगा। आठ रुपये सेर वाली तम्बाखू जो अभी कल मिट्ठू तम्बाखू वाला नजर दे गया उसे क्या किया, क्यों नहीं भरा?

फहमुआ—साहब भूल गयेउं हे भरे लावत हूँ।

(नकीअली सलाम कर नन्दू को सामने हाजिर कर)

"हुजूर, यह तो मिले हैं बाकी दोनों की फिक्र में दारोगा साहब गये हैं।"

कोतवाल—आहा आप हैं, कहिये आप तो बाबू साहब के बड़े दोस्त हैं (मनमें) खैर, पहले इसी मूजी से निपट लें। यह बड़ा बदमाश और चालाक है, अच्छा आज चंगुल में आया (प्रकाश) आप लोग देखने हो, के सुफैद पोश हैं पर काम जो आप लोगों से बन पड़ता है वह एक हकीर छोटे से छोटा आदमी भी न करेगा। उस जाली दस्तावेज में आप का भी दस्तखत है सच बतलाओ तुमने किस तरह उस पर दस्तखत किया। आप तो कानून से भी वाकिफ हैं, अदालत की बातों को अच्छी तरह समझते हैं, तब मालूम होता है इसमें कुल शरारत आपही की है।

नन्दू—हुजूर, जब यह दस्तावेज जाली है तब मेरा दस्तखत भी जाल से बना लिया गया तो इसमें अचरज क्या है?

कोतवाल—खैर, तुमने भी इकरार किया कि दस्तावेज जाली है और यही तो मेरा मतलब है (नकी अली से) अच्छा इसे ले जाओ, पहरे में रक्खो, उन दोनों को भी आ जाने दो तो जो कुछ कार्रवाई होगी की जायगी।

उन्नीसवां प्रस्ताव ।

"विपदि सहायको बन्धु"

निशा का अवसान है। आकाश में दो एक चमकीले तारे अब तक जुगजुगा रहे हैं। अरुणोदय की अरुणाई से पूर्व दिशा मानो टेसू के रंग का वस्त्र पहिने हुये दिननाथ सूर्य की अगवानी के लिये उद्यत सी हो अपनी सौत पश्चिम दिशा को ईर्षा-कलुषित कर रही है। लोग जागने पर रात के सन्नाटे को हटाते हुये अपने अपने काम में लगने की तैयारी करते सब ओर कोलाहल सा मचाए हुये हैं। कोई सवेरे उठ भगवान् के पवित्र नामोच्चारण में प्रवृत्त हैं, कोई शौच कर्म के लिये हाथ में सोंटा और लोटा लिये बहिर्भूमि को जा रहे हैं, कोई दन्त धावन के लिये वृक्ष की डालियां तोड़ रहे हैं, कोई अपने छोटे छोटे बालकों को गुरू जी के यहां ले जा रहे हैं, कोई मचलाये हुये लड़कों को फुसला रहे हैं, खेतिहर बैल और हल लिये खेत की ओर जा रहे हैं।

ऐसे समय सुजान सिंह दारोगा तीन कांनस्टेबल साथ लिये बाबू की कोठी के द्वार पर यमदूत सा आ विराजे और यही कोशिश में थे कि ज्योंही दोनों बाबुओं में से कोई भी बाहर निकले कि उन्हें वारंट दिखा गिरफ्तार कर लें॥

बाबुओं की हवेली के पिछवाड़े खिड़की सा एक छोटा दरवाजा जनाने मकान का था। हीरा चन्द के समय तो बीसों दास दासी भोरही से अपने अपने टहल के काम में लग जाते थे पर वह तो अब किस्सा किहानी की बात हो गई। पर अब भी मखनिया नाम की पुरानी चाकरानी जो हीरा चन्द की स्त्री के

बहुत मुह लगी थी पुराना घर समझ अब तक टहल के काम में लगी ही रहो। यह महानिया हीरा चन्द का समय देख चुकी थी। बाबुओं के जघन्य आचरण पर मन ही मन कुढती थी। कोठी के दरवाजे पर पुलिस को बैठे देख खिडकी को धीरे से खटखटाया। सेठानी निकल आई और किवाडा खोल इसे भोतर ले गई। इसे भौचक्की सी देख कारण पूछा तो यह कहने लगी—"बहू जी, आज काहे दुआर पर पुलिस के चपरासी बैठे हैं ?" यह सुनते ही सेठानी के हाथ पाव फूल गये घबडा उठी "हाय! सब तो गया ही था अब क्या सेठ के नाम में भी कलङ्क लगा चाहता है ? हाय! कपूत किसी के न जन्में!—अच्छा, तो जा चन्दू को बुला ला, तब तक मैं जा उन दोनों बाबुओं को जगाती हू,-और सावधान किये देती हू" ।

सेठानी-(मन में) हाय! मुझ निगोडी को मौत न आई। सेठ के स्वर्गवास होते ही सोने का घर छार में मिल गया। सच है "पूत सपूते तो धन क्या, पूत कपूते तो धन क्या" सेठ के समय का राजसी ठाठ तो न जानिये कहा बिलाय गया। किसी तरह अपनी बात बनी रहे और जिन्दगी के दिन कटैं इसी को मैं अपना सौभाग्य मानती थी सो उसमें भी बट्टा लगा। हाय! तिमहले पर दोनों बाबू सो रहे हैं, इतनी सीढियां मुझ से चढ़ी न जायगी और यहा से पुकारना ठीक नहीं तो अब क्या करूं ? अच्छा चन्दू को आने दो।

चन्दू भी अचभे में आया कि आज इतने सवेरे सेठानी ने क्यों बुलाया। बाहर पुलिस का पहरा देख उसी खिड़की से भीतर गया।

चन्दू—बहू जी क्या आज्ञा होती है ?

सेठानी—(रो रो कर) चन्दू, मैं तुम्हारे ऋण से उरिण

नहीं है, एक तुम्हीं तो सहारा हो नहीं तो चारों ओर से ऐसी भयङ्कर बयारें बह रही है कि कहीं पता न लगता (कान में कुछ कह)।

चन्दु—अच्छा, तो तुम इतनी फिकिर रक्खो कि यारू बाहर न निकलने पावें, मैं सब ठीक कर लूंगा।

बीसवां प्रस्ताव।

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि—
प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि शडङ्घ्रि—
निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः॥

पाठक! आज अब यहां हम प्रेमपुष्पावली के दो भ्रमरों का कथानक आप को सुनाना चाहते हैं। कुछ लिखने के पहिले आप को सावधान किये देते हैं कि हमारे ये दोनों भ्रमर निस्वार्थ प्रेमी हैं। इन्हें आप उस कोटि के प्रेमी न समझना जैसा इन दिनों बहुतेरे अपना मतलब साधने के लिये परस्पर प्रेमी बन जाते हैं। जरा भी अपने स्वार्थ में चूक हो जाने पर मैत्री क्या बल्कि सांप और नेवले का सा हाल उन दोनों का हो जाता है। हमारे पाठक पचानन से परिचित होंगे, जिनकी भेंट हम अपने पढ़ने वालों को पहिले करा चुके हैं। इस प्रेम के दूसरे भ्रमर का बार बार नामसङ्कीर्तन अनुपयुक्त है। बस समझ रक्खो इस सौ अजान में यही एक सुजान है, जिसे हम प्रेम की फुलवारी का दूसरा भ्रमर कह परिचय देते हैं। पञ्चानन ठठोल तो था ही पर इसका ठठोलपन सब के साथ एक

सा नहीं रहता था। किसी तरह के तरद्दुद, फिकिर और चिन्ता से इसे चिढ थी। किन्तु जब अपने किसी एकान्त प्रेमी को तरद्दुद में पड़ा देखता था तो जहा तक बन पडता था आप भी उसे तरद्दुद से बाहर करने को भिडी तो जाता था। इस समय चन्दू को कुछ न सूझा और कोई बात मन में न आई कि कैसे सेठ के घराने को दुर्गति से बचावें केवल इतना ही कि पचानन से मिल इससे इसकी कुछ सलाह करें, इस लिए कि पञ्चानन अदालती कार्रवाइयों को भरपूर समझता है, वह कोई ऐसी बात निकालेगा कि जिससे भरपूर निस्तार हो जाय। यद्यपि इन दोनों की गाढ़ी मैत्री तो थी पर पचानन अपनी ठठोल आदत से बाज न आ चन्दू को 'चकोर' कहता था और चन्दू भी इसे 'चारु चचरीक' कहा करते थे। आज अपने यहा भोर ही को चन्दू को आये देख पञ्चानन बोले "आज चकोर को दिन में चकाचौंधी कैसी ? कुसूर माफ 'अद्य प्रातरेवानिष्ट दर्शनम्'"।

चन्दू–सच है अनिष्ट दर्शन भी इष्टदर्शन न हुआ तो चारु चंचरीक के चिरकाल का प्रेम कैसा ?

पञ्चानन–आप तो जानते ही हैं कि कुशल प्रश्न के पूछने में कैसी पेचिश उठा करती है, इससे मैंने यही बेहतर समझा कि इस आदत से बाज रहूं, और फिर वह प्रेम ही क्या जब इस प्रेम के बाग के माली की प्रेम पुष्प की सुगन्धित कली हृदय के आलवाल में खिल परस्पर एक दूसरे को प्रमुदित न कर सको।

चन्दू–सच है, यदि उस आल वाल के चारों ओर कटीले पौधे न उग आये हों, इसलिए जब तक उन कटीले पौधों

को उखाड़ न डालेगा तब तक उस माली की सराहना ही क्या ?

पचानन–खैर, आप भी इस दुनयवी पेच में आ फसे "बाद मुद्दत के फसा है यह पुराना चडूल" (हसता है)।

चन्दू–मित्र, अब इस समय ठठोलबाजी रहने दो, कोई ऐसी बात सोचो जिसमें सेठ के घराने की पत रह जाय। हम् लोग निरे पोथी बाचने वाले अदालत की कार्रवाइया और कानून के पेचों को क्या समझें। तुम अलबत्ता इसमें परिपक्वबुद्धि हो। कोई ऐसी बात सोंच के निकालो कि इन दोनों बाबुओं का निस्तार हो, नन्दू और बुद्धदास को अपने किये का फल मिले।

पचानन–जी हा, बाबुओं ने तो समझा था कि यह वो हाथ मारा है। रकम इतनी हाथ लगती है कि कुछ दिन के लिए चैन है। अच्छा तो मैं अब इस बात की खोज करूगा कि यह जाली दस्तावेज किस ढग पर लिखा गया है और बाबुओं की साजिश उसमें कहा तक है। तो अब इस जून तो आप पधारें, हम इसकी फिकिर करेंगे पर पुलिस के कुत्तों का मुह मार पिंड छुटवाना वाजिब है।

अस्तु चन्दू ने उन दोनों के बचाने को क्या किया सो आगे खुलेगा। पञ्चानन को जी से लग गई कि अपने मित्र चन्दू की इच्छा पूरी करे। अब यह सोचने लगा कि क्या उपाय होना चाहिये कि चदू का मनोरथ भी सिद्ध हो और उन दोनों बदमाशों को उनके किये का फल मिले। पञ्चानन चालाकी और कानूनी बारीकियों के समझने में किसी से कम

न था, बल्कि उस प्रान्त के नामी वकील पेचीदह मुकदमों में बहुधा इसकी राय लिया करते थे। कभी कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जिस मुकदमें में इसने जैसी राय दी वह हाईकोर्ट तक बहाल रही बड़े बड़े जालियों को यह बात की बात में ऐसा पकड़ लेता था कि उनकी एक भी नहीं चलती थी। पर इन सब गुणों के रहते भी इसे जो सच्चा, न्याय और इन्साफ होता था वही पसन्द आता था। "साच को आच क्या" यह पालिसी हमेशा इसे रुचा की। इस लिये इसको यही पसन्द आया कि हीरा चन्द के दोनों मशधर खुद अदालत में जाय हाजिर हों और जो सच हो सो कह दें। इससे वे दोनों तो जरूर ही फस जायंगे, और बाबुओं के बचाव की कोई सूरत निकल आवेगी। अब रह गया इनका बकरीर कर देना, इस पर बहस और तकरीर की बहुत कुछ गुजाइश रहेगी। सच पूछो तो यह बड़े बड़े बैरिस्टर और वकील जो हजारों एक दिन की बहस का मुवक्किल से पुजाय बेचारे को उलटे छूरा मूड भरपूर अपना मतलब गांठते हैं, सो इसी तकरीर और बहस की बदौलत। वाह धन्य! विधाता! यह जो प्रचलित है कि "बात की करामात" सो क्या ही सटीक है। बात में बात पैदा कर देना अङ्गरेजी ही-कानून हमें सिखाता है। पर तोफगी तो यह, जैसा मसल है "चोर से कहो चोरी करे, शाह से कहो जागता रहे" इसी का नाम है। हमें क्या हमें तो दिल बहलाव चाहिये, हम मुक्द्दमों की पेचीदगी ही में अपना दिल बहलाव निकाल लेते हैं। पर सच पूछो तो (Litigation) कानून की बारीकियां ही बेईमानी और फरेब लोगों को सिखा रही हैं। इसी से मुझे यही इसमें बचाव की सूरत मालूम होती है कि बाबू जो कुछ सच्चा

हाल हो अदालत में आ एकरार कर दें। कानून की मन्शा है कि जुर्म करने वाला कसूरवार नहीं है, बल्कि वह जो उस जुर्म का उसकाने वाला होता है। ऐसा होने से मुकद्दमे में बहस की कई सूरत पैदा हो जायगी। कदाचित् बडे सेठ के रईस घराने पर रहम कर हाकिम बाबुओं की रिहाई कर दे।

इक्कीसवां प्रस्ताव।

खल उघरे तत्काल।

मसल है "सबेरे का भूला सांझ को आवे तो उसे भूला न कहना चाहिये"।

दूसरे दिन चन्दू बाबुओं के पास गया और पाला की मारी मुरझानी कली सी उनके मुख की छवि पाय, चन्दू के मन में सेठ जी के साथ इसका पुराना सच्चा स्नेह उमड आया। बाबू भी इसे देख आसुओं की धारा बहाने लगे। जिससे मालूम होता था कि अब यह दोनों राह पर आने का पूरा इरादा कर चुके हैं, और जो चूक इनसे बन पडी है उसके लिए भरपूर पछता रहे हैं। चन्दू भी अब इन्हें इस समय अधिक लज्जित करना उचित न समझ, ढाढस बधाते हुए बोला "सांझ का भूला सवेरे आवे तो उसे भूला नहीं कहते, अब भी कुछ नहीं बिगडा, तुम बडे बाप के लडके हो, कभी सम्भव नहीं था कि सेठ हीरा चन्द ऐसे धर्मात्मा और पुण्यशील के घर वालों का ऐसा हाल हो। तुम कुसंग में पड यहां तक अपने को भूल कर अज्ञान बन गये कि अन्त को इस दशा को पहुचे, अब शोक मत करो, मैं फिकिर कर चुका हूं। ईश्वर ने

चाहा और मेट का सुकृत है तो तुम्हारा बाल न बाँकेगा और अदालत मे तुम्हारी रिहाई हो जायगी, किन्तु जिनके जाल में तुम अब तक फंसे थे और जिन्होंने चाहा था कि इन नई चिड़ियों को फंसाय कर्बाब सा भून निगल बैठें, वे ही अपने पातक अग्नि में भुन कर कबाब हो जायेंगे। तो अब आगे से प्रण करो कि अब अज्ञान न बनें।"

दोनों की इस तरह पर बात चीत हो रही थी कि सड़क से चिल्लाते हुए किसी की आवाज सुन पड़ी "हाय! मैंने ऐसा नहीं समझा था कि नन्दू के कारण मेरी यह दशा होगी। उसे बदमाश नन्दू ने अपने अरमक बाबुओं को बेवकूफ बनाकर फसाने की कोई बात छोड़ नहीं रक्खी थी। मैं यह ज़रूर कहूंगा कि बाबू ऐसे रईस खान्दानी की यह कभी इच्छा न रही होगी कि वे थोड़े के लिए नियत बिगाड़ें। यह नन्दू इस बुराई का जैसा बानीमुबानी रहा वैसा ही यह सब मुसीबत भी उसी पर आ टूटी। मैं बेकसूर हूँ" पुलीस के सिपाही— "चुप रह बे, सेत मेत की टाँय टाय कर रहा है। उस वक्त इन सब बातों का खयाल क्यों न किया, जब जाल रचने बैठा था। बचा, बहुत दिनों के बाद हम लोगों के चंगुल में आये हो"।

नन्दू इन सब बातों को सुन मन ही मन प्रसन्न होने लगा और सोचने लगा कि इसका इस जून का यह चिल्लाना मेरे लिए बहुत फायदे का हुआ। अब मैं जाऊं और इसकी खबर पचानन को दूं।

नन्दू—(प्रकाश) बाबू, तुम बेखटके रहो ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी रिहाई हो जायगी।

—०—

बाईसवां प्रस्ताव।

सत्यमेव जयति नानृतम्।

अन्त को यह मुकदमा लखनऊ के चीफकोर्ट में पेश किया गया। पचानन को-इसमें चन्दू ने गवाह नियत किया। पचानन को जो सदा चैन में रहना ही अपने जीवन का उद्देश्य माने हुए था, लखनऊ जाना नागवार हुआ किन्तु चन्दू के उद्देश्य से उसे ऐसा करना ही पड़ा। दूसरे यह कि चन्दू ने बाबू का कचहरी में जाना अनुचित और सेठ हीरा चन्द की हतक समझ इसे बाबुओं की ओर से मुख्तार मुकर्रर किया था।

मुकदमा शुरू होने पर, चन्दू बुलाया गया। यह कांपता कांपता दो पुलीस के पहरे में जज के सामने हाजिर हुआ। जज ने पूछा "तुम अपनी सफाई इस मुकदमे में क्या देते हो?"

चन्दू—हुजूर, यह सब पुलीस की कार्रवाई है। मेरा इसमें कोई कुसूर नहीं और हो भी तो यह हरकत मैंने बाबू के कहने से की।

पचानन—चन्दू बाबू, तो क्या आप इसमें बिलकुल बेकुसूर हैं? उस दिन वारंट आपके नाम आया था कि बाबू के नाम? आप चालाकी से न चूकियेगा। सच है अन्धड़ में जब कोई बड़ा पेड़ उखड़ने लगता है तो अपने साथ दो एक छोटे मोटे वृक्षों को भी ले डालता है, और आपने तो ऐसे ऐसे कई एक बाबुओं को हलाल कर डाला। पहले आपने कहा "हम बिलकुल बेकुसूर हैं" पीछे से कहते हो "किया भी तो बाबुओं के कहने से"—इससे साफ जाहिर है कि आप अपने साथ बाबुओं को भी फसाना चाहते हैं।

जज—(पुलीस से) तुम दोनों इसके बारे में क्या जानते हो ?

पहिला पुलीस—हुजूर, इसने जाल किया है और हमेशा से यही काम करता रहा है, इसके साथ एक आदमी, नन्दू बुद्ध और भी है, वह भी इसी अदालत में हाजिर है, ये दोनों आपस में मिले हुए हैं और यही पेशा इन लोगों का है कि नई उमर वाले रईस के लड़कों को फसाया करें।

पचानन—हुजूर, यह बिलकुल सही है आज दिन अवध भर में हीरा चन्द जैसे रईस हैं सब लोग जानते हैं, तब उनके लड़कों को क्या पड़ी जो इतनी थोड़ी सी रकम के लिये ऐसी बेइज्जती का काम कर गुजरेंगे। अदालत को जो कुछ दरियाफ्त करना हो मैं उनकी तरफ से मुख्तार हाजिर हूँ, पर इतना जरूर कहूँगा कि इन दोनों का हमेशा से यही ढंग चला आया है। ये लोग रेवड़ी के लिये मसजिद ढहाने वाले हैं। क्यों नन्दू बाबू, सच है न ? (नन्दू सिर नीचाकर लेता है) हुजूर, अब अदालत को कोई शक इसके कुसूरवार होने में न रहा, और फिर इन दोनों का तो सदा से यही माकूला रहा है कि अङ्गरेज़ी राज्य में अदालत और कानूनों की पेचीदगी इसी लिये है कि जाल रचे जाय।

जज—अगर तुम्हारा कहना सही है तो तौहीने अदालत एक दूसरा कुसूर इसपर लगाया जा सकता है। अच्छा, तो इस जुर्म के लिये इसको सात वर्ष की सख्त सजा का हुक्म दिया जाता है और अदालत मातहत की तजवीज देखने से मालूम हुआ है कि कातिब इस जाल का बुद्ध दास है। इस लिये उसको दश वर्ष की कैद का हुक्म होता है।

तेइसवां प्रस्ताव

राजा करै सो न्याव, पांसा पड़े सो दांव

नन्दू का बुरा परिणाम देख इन बाबुओं को कुछ ऐसा भय सा समा गया कि उसी दिन से उन्हें चेत हो आई। जैसा किसी को दीवानापन सवार होगया हो लगातार किसी अक्सीर दवा के सिधने से जब दीवानापन उतर जाय, अथवा सोने से जैसा कोई जाग पड़ा हो, या कोई मादक द्रव्य भाग अफीम शराब इत्यादि पी कर मतवाला हो बेकेसा फिरे मद उतर जाने पर, अथवा भूत सवार हो झार फूक के उपरान्त उतर जाने से होश आने पर अपने किये को पछताता हुआ मुह छिपाता फिरे, यही हाल इस समय दोनो बाबुओं का था। अब जो इन्हें चेत आई तो एकान्त में बैठ ये घंटों तक आंसू बहाया करते और पछताते। सब से अधिक पछतावा इन्हें बड़े सेठ साहब की बनी हुई बात के बिगड़ जाने और असंख्य धन के निकल जाने का था। "हाय! इस बदमाश नन्दू ने मुझे अपने जाल में फसाय मेरी कैसी दुर्गति करा डाली।" अब इनको यह ख्याल आया कि जिस बात में अब भी किसी तरह जरा भी उस बदमाश का लगाव रह जायगा उसमें कुशल नहीं। "यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृत-तदपिमृत्यवे"। अपने चचा बुड्ढे मानिक चन्द का नन्दू को बाबू ने मुख्तार आम कर दिया था उस मुख्तारनामे को अदालत से मन्सूख करा दिया और नन्दू की सलाह मान मानिक चन्द का माल मताल अपने कब्जे में लाने की जो अभिसन्धि की थी उससे भी अपने को अलग कर जो कुछ कीमजा उस बूढ़ सेठ का

नन्दू ने सन्दूक से उडा लाया था और जो कुछ जायदात थी सब मिट्ठू को बुलाय सिपुर्द फिर चन्दू को उसका मुखतार कर दिया और ये दोनो बाबू बडे सेठ हीरा चन्द के चलाये पथ पर चलने लगे। परिणाम में कुछ दिन उपरान्त हीरा चन्द के घराने की प्रतिष्ठा फिर वैसी ही हो गई। पाठक, देखिये सौ अजान में एक सुजान कैसा गुनकारी हुआ कि सब अजानों को फिर राह पर अन्त को लाया ही, नहीं तो कौन आशा थी कि ये दोनों सेठ के लडके कभी सुढंग पर आ सुधरेंगे। दूसरे यह कि जो सुकृती हैं उनके सुकृत का फल अवश्यमेव औलाद पर आता है। हीरा चन्द से सुकृती की औलाद दूषित चरित्र की हो यह अचरज था। अन्त को हम अपने पढने वालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हो तो हमारे इस उपन्यास को पढ आशा करते हैं सुजान बन, इस किस्से के अजानों को सुजान करने को चन्दू था और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।

॥ इति ॥

टिप्पणी सहित कठिन-शब्दार्थ-सूची

सांकेतिक-शब्द-(स० से संस्कृत। अल० से अलङ्कार। अ० से अरबी। फा० से फारसी। अंग० से अङ्गरेजी।)

खोटा-(सं० क्षुद्र) दुष्ट।

ताती-(सं० तप्त) जलता हुआ, गरम।

दुर्व्यसनी-बुरा शौक करनेवाला, फ़िजूल-ख़र्च, अपव्ययी।

"दुर्व्यसनी ... लगे हैं"-यहाँ पर उपमा अलङ्कार है।

"मानो प्रकृति देवी ... चाहती है"-इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रेयसी-प्यारी, प्रियतमा।

"मानो हँस सा रहे हैं"-उत्प्रेक्षा अलँ०।

"जिसकी सम विषम ... व्याप रही है"-उपमा अल०।

सम विषम भूभाग-ऊबड़ खाबड़ धरती।

वितान-चँदवा।

"मानो वितान रूप ... दिया गया है।"-उत्प्रेक्षा अल०।

"मालूम होता है ... होड़ लगाये हुये हैं-उत्प्रेक्षा अल०

होड़-स्पर्धा।

"मोती से चमकते ... उपहार बन रहे हैं"-समासोक्ति अल०।

निशानाथ-(निशा-रात, नाथ-स्वामी) रात्रि के स्वामी चन्द्रमा।

निशावधूटी-रात्रि रूपी नव (नई) वधू (बहू)।

"चाँदनी ... धरती"-अपह्नुति अल०।

"यहाँ कन्या ... प्रस्तुत है"-समासोक्ति अल०।

मनसिज-(मनसि-मन में, ज-पैदा होना) मन से जो पैदा हो; कामदेव, इसका दूसरा नाम मनोभव है।

भेख-(सं०-वेष) पहिनाव।

तरुनाई-(सं०-तारुण्य) जवानी

कचलपटी–(सं० कच्छलम्पटता)–आवारगी।
छिछोरपन–क्षुद्रता, नीचता।
आय (पुरानी हिन्दी के "आसना" "आहना" (होना) क्रिया का पूर्वकालिक रूप शुद्ध शब्द "आहि" है। मेरा अटकल है पुरानी हिन्दी के अनुसार धातुओं का पूर्वकालिक रूप ऐसा ही लिखा है। अन्य स्थानों में भी जैसे "पकड़ाय", "बुलाय" इसी तरह से समझना चाहिये) आकर।
सोवत हैं–सोते हैं (प्रयाग के आस-पास की यह भाषा है)।

दूसरा प्रस्ताव।

जलप्राय–जलमय, वह प्रदेश या स्थान जहां जल अधिकता से हो।
हरित तृण-आच्छादित–हरी हरी घास से ढकी हुई।
मरकतमई सी–मानों पन्ने (एक प्रकार का हरा मणि) से जड़ी हुई।
याँकुरे–बांके, बांका (यह शब्द प्रायः वीर शब्द के साथ आता है, जैसे "वीर बाँकुरे")।
पुण्यतोया–पवित्र जल वाली।
सरिद्वरा–नदियों में श्रेष्ठ।
विघ्नै ... परित्यजन्ति।–("उत्तम जना" के स्थान पर "चोत्तम जना" पढ़िये), बारम्बार विघ्न पड़ने पर भी जो कार्य को आरम्भ करके उसे बीच ही में नहीं छोड़ देते वे श्रेष्ठ पुरुष हैं।
अनुशीलन–अभ्यास, अध्ययन।
बहुश्रुत–(बहु–बहुत, श्रुत–सुना हुआ या शास्त्र) जिसने बहुत सुना हो अर्थात् विद्वान, पण्डित।
ग्रंथचुम्बक–(ग्रंथ–पुस्तक, चुम्बक–चूमने वाला) जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान न हो, वरन ग्रंथों का केवल पाठमात्र कर गया हो उसके विषय को समझता न हो। अल्पज्ञ।
साक्षरमात्र–जो थोड़ा भी पढ़ा लिखा हो।
वृत्ति–काम।
बेढ़ंग–बिना सोचे समझे।
बेजा–अनुचित।
जनखा–(अ० जनक) हिजड़ा, नपुंसक।

सुमिरनी-जपने की २७ दानों की माला।
नितान्त-अत्यन्त।
स्फूर्त्ति-प्रकाश, प्रतिभा।
नवनता-नम्रता।

तीसरा प्रस्ताव।

"गुणैः निर्धीयते"-गुणों की सब जगह क़दर होती है।
विद्वन्मण्डली-मण्डन शिरोमणि-विद्वानो के समूह में सर्व श्रेष्ठ।
दुरूह-कठिन।
अनुपपन्न-असमर्थ।
गुजरान-(फा० शब्द) व्यतीत, जीविका निर्वाहार्थ।
श्रुताध्ययनसम्पन्न-विद्वान।
सद्वृत्त-अच्छा चरित्र वाला, सदाचारी।
लिलार-(सं० ललाट) मस्तक, माथा।
दामिनि-(सं० दामिनी) बिजुली।
आर्ष-ऋषियों का बनाया हुआ।
सन्धा-शठ।
मालूम होती थी-मालूम होता था।
मन मानस-मन रूपी मानसरोवर, रूपक अलं०।
कायिक-शरीर सम्बन्धी।
मानसिक-मन सम्बन्धी।
मोतकिद-कायल।
"शान्ति और क्षमा कुसुमाकर"-इसमें रूपक अलङ्कारों की लड़ी की लड़ी है।
तृष्णालता गहन वन-लोभरूपी लताओं का घना जंगल।
अज्ञानतिमिर-मूर्खता रूपी अन्धकार।
सहस्रांशु-(सहस्र-हजार। अंशु-किरण) हजार किरणवाला, सूर्य।
दुराग्रह-किसी बात पर मूर्खता के साथ हठ करना।
क्रूरग्रह-पाप ग्रह (सितारे), शनि आदि, राहु, केतु आदि।
अस्ताचल-(अस्त-डूबना, छिपना। अचल-जो न चले, पर्वत या पहाड़) पुराने सिद्धान्त के अनुसार जहां सूर्य, चन्द्रमा आदि अस्त (छिप) हो जाते हैं।

उदयगिरि-वह पर्वत जहाँ से सूर्य आदि ग्रह उदय होते हैं।
उपशम-शान्ति।
सौजन्य सुमन-सुजनता रूपी फूल।
कुसुमाकर-वसन्त, वाटिका।
रीझगये-प्रसन्न होगये।
पट्टशिष्य-मुख्य शिष्य।
अनुहार-समानता।
वाक्पाटव-बोलने में चतुराई।

चौथा प्रस्ताव

"यौवन चतुष्टयम्"-जवानी, धन दौलत, प्रभुताई, और अणा मना इन में से एक एक अनर्थ के कारण होते हैं फिर जहां ये चारों इकट्ठे हो जाय उसका क्या कहना।
येइन्तिहा-असंख्य।
आकृति-शकल, सूरत।
"मानो महीने, हैं"-यहा उत्प्रेक्षा अलंकारों की एक लड़ी है जिसमें रूपक अलंकार भी गौण रूप से विद्यमान है।
सुकृतसागर-पुण्य का समुद्र।
बीजाङ्कुर न्याय-बीज और अंकुर में जो परस्पर में सम्बन्ध है उसी को देखकर इस न्याय की उत्पत्ति हुई है अर्थात बीज अंकुर का कारण है उसी तरह से अंकुर भी बीज का कारण है। यह न्याय उस स्थान पर व्यवहार होता है जहां दो चीजों के बीच में कार्य और कारण का सम्बन्ध होता है।
अंक-चिह्न चन्द्रमा में कलंक।
सामुद्रिक शास्त्र-ज्योतिष, शास्त्र का एक अंग जिससे हस्तरेखा आदि का विचार किया जाता है।
समाय सके-समा सके, (इस तरह का रूप भी भट्ट जी की हिन्दी की खास विशेषता है। इसी तरह से "जाय सके," "खाय सके" इत्यादि।)
लल्लोपत्तो-चापलूसी, खुशामद।
खुचुर-(सं०-कुचर) व्यर्थ का दोष निकालना।

सुमिरनी-जपने की २७ दानों की माला।

नितान्त-अत्यन्त।

स्फूर्त्ति-प्रकाश, प्रतिभा।

नम्रता-नम्रता।

तीसरा प्रस्ताव।

"गुणैः निधीयते"-गुणों की सब जगह क़दर होती है।

विद्वन्मण्डली-मण्डन शिरोमणि-विद्वानों के समूह में सब श्रेष्ठ।

दुरूह-कठिन।

अनुपपन्न-असमर्थ।

गुजरान-(फा-शब्द) ध्यतान, जीविका निर्वाहार्थ।

श्रुताध्ययनसम्पन्न-विद्वान्।

सद्वृत्त-अच्छा चरित्र वाला, सदाचारी।

लिलार-(सं० ललाट) मस्तक, माथा

दामिनि-(स० दामिनी) बिजुली।

आर्ष-ऋषियों का बनाया हुआ।

सन्ध्या-पाठ।

भासती थी-मालूम होता था।

मन मानस-मन रूपी मानसरोवर, रूपक अल०।

कायिक-शरीर सम्बन्धी।

मानसिक-मन सम्बन्धी।

मोतकिद्-कायल।

"शान्ति और क्षमा कुसुमाकर"-इसमें रूपक अलङ्कारों की लड़ी की लड़ी है।

तृष्णालता गहन वन-लोभरूपी लताओं का घना जंगल।

अज्ञानतिमिर-मूर्खता रूपी अन्धकार।

सहस्रांशु-(सहस्र-हजार, अंशु-किरण) हजार किरणवाला, सूर्य।

दुराग्रह-किसी बात पर मूर्खता के साथ हठ करना।

क्रूरग्रह-पाप ग्रह (सितारे), शनिश्चर, राहु, केतु आदि।

अस्ताचल-(अस्त-डूबना, छिपना। अचल-जो न चल, पर्वत या पहाड़) पुराण सिद्धान्त के अनुसार जहां सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह अस्त (छिप) हो जाते हैं।

उदयगिरि—वह पर्वत जहाँ से सूर्य आदि ग्रह उदय होते हैं।

उपशम—शान्ति।

सौजन्य सुमन—सज्जनता रूपी फूल।

कुसुमाकर—वसन्त, वाटिका।

रीझगये—प्रसन्न होगये।

पट्टशिष्य—मुख्य शिष्य।

अनुहार—समानता।

वाक्पाटव—बोलने में चतुराई।

चौथा प्रस्ताव।

"यौवन चतुष्टयम्"—जवानी, धन दौलत, प्रभुताई, और अविवेकता इन में से एक एक अनर्थ के करने वाले होते हैं फिर जहां ये चारों इकट्ठे हो जाय उसका क्या कहना।

येइन्निहा—प्रत्यक्ष।

आकृति—शकल, सूरत।

"मानो ... महीने हैं"—यहां उत्प्रेक्षा अलंकारों की एक लड़ी है जिसमें रूपक अलंकार भी गौण रूप से विद्यमान है।

सुकृतसागर—पुण्य का समुद्र।

बीजाङ्कुर न्याय—बीज और अंकुर में जो परस्पर में सम्बन्ध है उसी को देखकर इस न्याय की उत्पत्ति हुई है अर्थात् बीज अंकुर का कारण है उसी तरह से अंकुर भी बीज का कारण है। यह न्याय उस स्थान पर व्यवहार होता है जहां दो चीजों के बीच में कार्य और कारण का सम्बन्ध होता है।

अंक—चिह्न चन्द्रमा में कलंक।

सामुद्रिक शास्त्र—ज्योतिष शास्त्र का एक अंग जिससे हस्तरेखा आदि का विचार किया जाता है।

समाय सके—समा सके। (इस तरह का रूप भी भट्ट जी की हिन्दी की खास विशेषता है। इसी तरह से "आय सके," "लाय सके" इत्यादि।)

लल्लोपत्तो—चापलूसी, खुशामद।

खुचुर—(सं०—कुचर) व्यर्थ का दोष निकालना।

सुसुसियत-विशेषता।
खार खाते हैं-डाह करते हैं।
अक्खड़पन-अक्खड़पन, वपरवाही
दर्पदाह ज्वर-अभिमान रूपी जलन पैदा करने वाला ज्वर।
दाह-जलन।
सदुपदेश शीतलोपचार-अच्छे अच्छे उपदेश रूपी ठंढक पहुँचाने वाले सामान।
कारगर-(फ़ारसी शब्द) उपयोगी, लाभकारक, असर करने वाली।
मीर शिकार-(अमीर शिकार) अमीरों का शिकार करने वाला। जब एक अमीर के लड़के को बिगाड़ चुके तब दूसरे, फिर तीसरे इसी तरह अमीरों के लड़कों को बिगाड़ कर उनके धन हरण कर जाय मजा लूटते हैं।
खूसट-(सं० कौशिक) उल्लू, मनहूस।
कलामतों-(सं० कलावन्त) किसी इल्म या हुनर में उस्ताद।
दोगले-(अरबी शब्द) वर्णसंकर।

पाँचवाँ प्रस्ताव।

चहले-(सं० चिखिल) कीचड़।
नैये-(सं० नै-नई। वै (वय)-उमर) नई उमर, जवानी।
दारुण-कठोर।
सुखद-सुख देने वाला।
ऊष्मा-गर्मी।
कुसुम बान-जिसका बाण कुसुम (फूल) का हो, जिसे पुष्प धन्वा भी कहते हैं, कामदेव।
सलोनापन-लावण्य, लोनाई।
उमङ्ग-इच्छा, ज़ोर, उल्लास।
अनिर्वचनीय-अकथनीय, जिस का वर्णन न हो सके।
दाख-(फ़ा० शब्द) अंगूर।
वयस्सन्धि-लड़कपन और जवानी की उमर के मिलने का समय, नव यौवन।
तरेरे-घूरकर।
अपित्त-वल्कि।
तरल-तरङ्गिणी तुल्य-चञ्चल नदी के समान।
तारुण्यकुतर्की-जवानी रूपी दुष्ट कुतर्कवादी।
चोखा (चोदा)-शुद्ध और उत्तम।

अजहद–बहुत अधिक।
तिउरी–निगाह, दृष्टि।
बरहम–क्रोधित।
रस्तज़ूस–मेलजोल।
तकरीब–(अ शब्द) वसत, प्रवसा ड
शीशे आलात–(फ़ा० शब्द) शीशे क यत्र झाड़, फानूस आदि।

छठवाँ प्रस्ताव।

किमकार्यं कदर्याणाम्–दुष्ट तथा नीच के लिए कोई ऐसा बुरा काम नहीं है जिसे वह न कर सकें।
सन्नहटा–नीरव, शब्दाभाव।
तिग्मांशु–(तिग्म तेज। अंशु–किरण) सूर्य।
तीखी–(सं० तीक्ष्ण) तेज।
खरतर–तेज।
ब्रह्माण्ड–जगत्, संसार।
तचा–तेज।
लोहपिण्ड–लोहे का गोला।
अनुहार–समानता।
स्थावर–अचल, स्थिर, जो चले नहीं, जैसे पेड़ इत्यादि।
जंगम–चलने वाला, चरिष्णु, जैसे मनुष्य, पशु इत्यादि।
यावत्–जितने।
त्वगिन्द्रिय–स्पर्शेन्द्रिय, जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान हो।
शीतस्पर्शवत्यापः–कणाद मुनि ने पाँचों तत्वों में से जल तत्व की परिभाषा में लिखा है कि जल वह तत्व है कि जो छूने में शीतल हो।
दण्डायमान–लम्बा।
ललाटन्तप–ललाट (खोपड़ी) को तपानेवाला, अत्यन्त गरम, जैसा जाड़ घाम।
चण्डांशु–(चण्ड–तेज, गरम। अंशु–किरण) सूर्य।
उच्चाटन–तंत्र के छः अभिचारों या प्रयोगों में से एक, नाश।
नवोढा–नवविवाहिता, नव बधू, नई दुलहिन।
रूपगर्विता–अपने सुन्दरपने के घमंड में भरी हुई।
जड़्गरैतिन–परिश्रम करने वाली, महनतिन।
विक्षेप–खलल।
कर्कशा–लड़ाकिन, कटुभाषिणी।

प्रेमालाप-प्रेम की बात चीत ।
सहिष्णुता-सहन करने की शक्ति
सौहार्द-प्रेम ।
अठखेली-(सं० अष्टक्रीड़ा) मस्ती की या मतवाली चाल ।
अकाल जलदोदय-असमय में मेघों का आकाश में उदय होना ।
कदर्य-नीच, तुच्छ हृदय ।
घिष्टपिष्ट-गहिरा मेल जोल, गहिरा मित्रता ।
"एकेनापि कुलम् ;-("सव" के स्थान पर "सर्वं" पढ़िए) किसी एक खोडर में रखती हुई आग से जैसे कुल वन जल जाता है वैसे कुल में एक कुपुत्र के उप जने पर समस्त वंश का नाश हो जाता है ।
कोंपे-(सं० कंगीर) नया पौधा या अकुर, नवयुवक ।
गुल्छर्रे-आनन्द, भोगविलास ।
निर्गन्धोज्झितपुष्प-वह फूल जो सुगन्ध न रखने से फेंक दिया गया हो ।
ठौर-(सं० स्थान) जगह ।
कुलप्रसून-उत्तम वंश में पैदा हुआ ।
नटखट-धूर्त, कपटी ।
तमाशबीनी-(अ० तमाशा फ़ा० बीन-देखना) ऐय्याशी ।
वारविलासिनी और वार वनिता-(स० वार-समूह, सर्व साधारण, विलासिनी या वनिता-स्त्री) समूह भर का स्त्री, वेश्या ।
वलीअहद-स्थानापन्न, वारिस ।
उद्घाटन-प्रगट करना, खोल देना ।

सातवाँ प्रस्ताव ।

सन्तति पुण्य कर्मभिः-बाप दादों के पुण्य कर्म से सतान की उन्नति और प्रशंसा होती है ।
ईशान कोन-पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा ।
देवखात-किसी मन्दिर के पास का कुण्ड ।
हलका-घेरा ।
लहलहे-विकसित, हरेभरे ।
विटप-वृक्ष ।
आतप-घाम ।
जियारत-पूजा ।
परिशिष्ट-बची हुई ।